॥ श्रीः ॥

रसवाटिका.

जिसे

नागपुरनिवासी पं० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री-

जीने रसजिज्ञासुविद्यार्थिमिलिन्दोंके

विहारार्थ निर्मितकराय,

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया।

ज्येष्ठ संवत् १९६०, शके १८२५

जिस अभिप्रायसे हमने यह ग्रंथ लिपिबद्ध किया है उसका इस ग्रंथद्वारा यदि प्रतिपादन होसकेगा तो हम अपने परिश्रमको सफल मानेंगे. हम भरोसा करते हैं कि, हमारे प्रांतके शिक्षाविभागके मुख्य अधिकारीगण इस ग्रंथको नार्मलस्कूलके विद्यार्थियोंके लिये पाठ्यग्रंथ नियुक्तकर हमारे अभिप्रेतार्थको सफलकर हमें प्रोत्साहित करेंगे ।

अंतमें हम समस्त विद्वज्जनोंकी सेवामें सविनय प्रार्थना करते हैं कि, इस ग्रंथके बनानेमें हमसे जहां प्रमाद हो गया हो उसकी हमें कृपा पूर्वक सूचना दे उपकृत करें और यदि वे लोग समझें कि, हम अपने अभिप्राय के अनुसार इस ग्रंथको नहीं बनासके हैं तो सर्वसाधारणके हितार्थ वे एक ऐसे ग्रंथकी सृष्टिकरें कि जिससे अप्रगल्भबुद्धिके विद्यार्थियोंकोभी रसविषयक पूर्ण ज्ञान सुगमरीतिसे प्राप्त होसके ।

विशेषसूचना–इसग्रंथका दूसरा संस्करण जबहोगा तब जो कुछ इसमें छपनके दृष्टि दोष रहगयेहैं वह नहीं रहने पावेंगे । इसबार हमें आशा है कि, हमारे उदारचेता पाठकगण हमें एतदर्थ क्षमा करेंगे ।

नागपुर–(मध्यप्रदेश.)
टिमुरनी. २८ । ४ । ०३. } **गंगाप्रसाद अग्निहोत्री.**

॥ श्रीः ॥

सवैया–मत्तगयन्द ।

मानसके रसपूरित भावनि व्यक्त करै जिनकी सुठि बानी ।
जाहि पढ़ी सुनिकै सुअलौलिक आनँद पूरित हों कविज्ञानी ॥
वंदनकै तिनके पगको लहि आशिष प्रेम सुमंगल मानी ।
ग्रंथबनावनकाज हमारिहु आज कछू मति है हुलसानी ॥

हमारे यहां वेदांतशास्त्रकारोंने अंतःकरणके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार विकार वर्णित किये हैं । कोई कोई इनमेंसे मन और बुद्धिकाही प्रतिपादन करते हैं । सारांश यह कि, इन्हीं विकारोंकी अनेकानेक शाखाओंकी भित्तिकापर विविध शास्त्रग्रंथ लिपिबद्ध किये गये हैं । बुद्धि-संज्ञक भागसे तत्त्वसंशोधनविषयक गणित, ज्योतिष और न्याय प्रभृति शास्त्रोंकी सृष्टि मानी जाती है । रसनिरूपण मानसिक शास्त्रोंका फल माना जाता है । मानसिक शास्त्रमें इसविषयका विस्तृत निरूपण पाया जाता है कि–प्रीति, भय, हर्ष, शोक एवं मोह, क्रोध आदि अनेकानेक मनोवृत्ति-योंके धर्म क्या हैं और वे क्योंकर आविर्भूत होती हैं ?

और उनकी उत्पत्तिसे कौन कौन कार्य्य संपादित होते हैं निदान इन्हीं प्रणालियोंका अनुकरणकर हमारे साहित्य शास्त्रप्रणेतृगणोंने रसविषयक नियम बांधे हैं। आजादिन इस विषयके हमारे यहां संस्कृतमें उत्तमोत्तम ग्रंथ विद्यमान हैं हमारे भूतपूर्व्व भाषाप्रेमी रसज्ञलोगोंने अपनी मातृभाषाके साहित्यका गौरव बढ़ानेके हेतु संस्कृतके पंडितोंके सिद्धांतोंकाही अनुधावन करना अलम् समझ उनसे भिन्न कोई नियम निर्म्मित नहीं किये। संतोषका विषय है कि, आजादिन हमारी भाषामें इसशास्त्रके अनेकानेक ग्रंथ उपलब्ध होसकते हैं। पर बात इतनीही है कि,वे ग्रंथ एक ऐसीभाषामें निर्म्मित किये गये हैं कि,जिसे आजकलकी हिंदीके विद्यार्थीलोग भली भाँति समझ बूझ नहीं सकते। हां भारतके उत्तराचलनिवासी लोग उन-ग्रंथोंसे किसीप्रकार कुछ लाभ उठा भी सकते हैं पर अन्य-लोग उनसे तादृश लाभ नहीं उठासकते। इस ऊनताको पूर्ण करनेकी अभिलाषासे हमने यह छोटासा ग्रंथ लिखा है। भरोसा है कि, हमारा यह परिश्रम विद्वज्जनोंका कृपापात्र होगा।

प्रथमक्यारी।

रसोंकी सामग्री।

रसका लक्षणः—नाटकाभिनय तथा काव्यके पठन द्वारा यथाक्रम प्रेक्षक तथा पाठकोंको जो लोकोत्तर आनंद

प्राप्त होता है उस आनंदको साहित्यशास्त्रमें 'रस' कहते हैं उक्त लक्षणमें आनंदकी विशेपता लोकोत्तर विशेपणद्वारा सूचित की गई है. इसका कारण यही है कि, संसारकी किसी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिसे जो आनंद होता है उससे यह आनंद भिन्नप्रकारका रहता है एतावता उक्त वाक्यमें उक्त विशेपण प्रयुक्त कियागया है. यह आनंद प्रायः कविकी रचनाकी कुशलता तथा अनूठी उक्तिको जानकर उत्पन्न हुआ करता है अतः पंडितलोग परस्परमें वार्त्तालाप करतीवार कविकी रचनाविशेपकोही सरस वा निरस कहते सुनते हैं. जब रसज्ञ कविलोग कभी आपसमें चर्चा करने लगते हैं तब वे कहते हैं देखिये "इसपद्यमें संयोगशृंगार कैसा उत्तम वर्णित किया गया है, 'अमुक नाटक करुणा रस प्रधान है' अमुक श्लोकसे मानो रस टपका पडता है" इत्यादि इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि, उस रचनाविशेपकीही रससंज्ञा है, किन्तु उक्तवाक्योंसे इसी अर्थका ग्रहण करना उचित है कि, शृंगार वीरादिसंज्ञक जो आनंदविशेप उत्पन्न होता है तदुत्पादकसामग्री इस पद्य वा नाटकमें पायी जाती है इसप्रतिपादनसे यह बात स्पष्टतया जानी जाती है कि,हम लोग जो इसबातको निश्चित करते हैं कि, अमुक पद्यमें अमुक रस है वा नहीं है, सो उस पद्यमें उसकी पूरी २ सामग्रीको विचार करही निश्चित करते हैं सामान्यपाठकको रसकी सामग्रीका

बोध भलेही न हो, परंतु काव्यके स्वभावोत्पन्न फल स्वरूप विलक्षण आनंदका उसेभी अनुभव होही जाता है, और तदनुसार वह उस काव्यको सरस वा निरस स्थिर करताही है. अभिप्राय यह है कि, काव्यजन्य आनंदका होना वा न होना इसविशेषकी विवक्षित सामग्रीपर निर्भर है जिस रसके लिये जितनी सामग्री इष्ट है उतनीही सामग्रीका जब कवि पूर्णतया वर्णन करता है तब निश्चयपूर्वक रस उत्पन्न होताही है । अतः हमको उचित है कि, प्रथम हम रससामग्रीकी मीमांसा करें।

रसकी सामग्री ।

जब कि, ऊपर यह बात प्रतिपादित होचुकी है कि, काव्यजन्य आनंदको शास्त्रीलोग अपनी भाषामें रस कहते हैं तो उसकी सामग्रीका काव्यके वर्णनीय विषयोंमें पाया जाना भी आवश्यक जान पड़ताहै । कवियोंके वर्णनीय विषय प्रधानतः दोही पाये जाते हैं अर्थात् सृष्टपदार्थ (१) और उनके अवलोकन वा लाभालाभके योगसे उत्पन्न होनेवाले हर्षशोकादि मनोविकार । (२) अलंकारपटुलोग यद्यपि प्रायः इन्हीं दो भेदोंको प्रदर्शित किया करते हैं, तथापि वास्तवमें कविका मुख्यवर्णनीय विषय हर्षशोकादिक मनोविकारही कहा जासकता है । कदाचित् कोई कहे कि:—

विकारही है. साथही यह बातभी निर्द्धारित होती है कि, मनोविकार उत्पन्न करनेवाली सामग्रीही रससामग्री कही जा-सकती है कारण कार्य्य और तत्सहायकके समूहको रससा-मग्री कहते हैं । जैसे कोई मनुष्य किसीको मर्मवचन बोले तो उस मर्मवचनके कर्णगत होतेही उसके मनमें क्रोध नाम-का मनोविकार सहसा उत्पन्न होगा और उसके योगसे उ-सके नेत्र आरक्त होजायँगे होंठ फरफराने लगेंगे और स्यात वह उक्त मर्मवचन बोलनेवालेको पीटनेके लियेभी उद्यत हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं ।

अब यहांपर विचारना चाहिये कि,क्रोध नामक मनोविकार उत्पन्न होनेके लिये मर्मवचन बोलनेवाला मनुष्य और उसके मर्मवचन कारणस्वरूप हैं और ओठोंका फरकनादि चिह्न तथा मारनेको उद्यत होना आदिक्रिया उस मनोविकारके कार्य्यस्वरूप हैं । उसीप्रकारसे जिसमनुष्यको क्रोधसंज्ञक मनोविकार उत्पन्न हुआ है उसका उक्त मर्मवचन कहनेवालेने पूर्व्वमें यदि कोई अपकार कियाहो और उसकाभी उसे उस समय स्मरण हो आवे तो वह स्मरण उस मनोविकारको और भी चढ़ादेगा सारांश स्मरणरूप दूसरा मनोविकार क्रोध-रूप मुख्य मनोविकारको सहायता प्रदान करता है अर्थात् वह उसका सहकारी बनजाताहै इसीप्रकारसे हर्ष, शोक, भय प्रभृति अपर मनोविकारोंके कारण कार्य्य और सहकारि-

विभाव (कारण.)

मनोविकारोंके कारणोंको विभाव कहते हैं। यह कारण दो प्रकारके होते हैं एक तो वह कि, जिनका अवलंबन कर मनोविकार उत्पन्न होते हैं। और दूसरे वह पदार्थ कि, जिनके सहारे उद्भत मनोविकार वृद्धिलाभ करते हैं। जैसे निर्जनप्रदेशमें नाइकाको देखकर नायकके मनमें रति (प्रीति) नामक मनोविकार प्रादुर्भूत होता है, तात्पर्य्य उक्त मनोविकारका स्त्री आलंबन (कारण) है और एकांतस्थल उस मनोविकारको उद्दीपित करता है अतः वह उसका उद्दीपक (कारण) है। साहित्यशास्त्रमें आलंबन कारणको आलंबनविभाव और उद्दीपक कारणका उद्दीपन विभाव कहते हैं।

यह विभाव प्रत्येक रसके भिन्नभिन्न होते हैं इनका विशेष वर्णन यथास्थल कियाही जायगा उद्दीपनविभावके विषयमें यह बात विशेषरूपसे ध्यानमें धारण करने योग्य है कि, किसी२ ग्रंथकारकी सम्मति है कि, कभी कभी आलंबनके गुण उसकी चेष्टा तथा अलंकारादिसेभी मनोविकार वृद्धिलाभ करते हैं, एतावता यह भी उद्दीपनविभावांतर्गत माने जाते हैं यथाः—

दोहा—अरुण सरोरुह कर चरण, दृग खंजन मुखचंद।
समय आय सुंदर शरद, काहि न करत अनंद ॥

---

१ इसकी व्याख्या ग्रंथकारके टिप्पणमें देखलीजिये ।

सु फूले उसपान गात गोपिनके भुंज हैं ॥
ऊधो यो सूधोसों सँदेशो कहिदीजे भले,
हरिसों हमारे ह्याँ न फूले वनकुंज हैं ।
किंशुक गुलाब कचनार औ अनारनकी,
डारनपै डोलत अँगारनके पुंज हैं ।

इस कवित्तमें तटस्थ जो वसंतकाल वही उद्दीपन विभाव है । इसीप्रकारसे देखके उदाहरणभी अन्यत्र देखलेने चाहिये। और अपर रसोंके विषयमेंभी पहिचान करलेनी चाहिये अब आगे अनुभावोंका वर्णन कियाजाता है।

अनुभाव (कार्य्य)

३ आहार्य्या ।

वेषांतरित हो अभिनयद्वारा जो भाव प्रदर्शित कियाजाता है उसे आहार्य्यानुभाव कहते हैं । यह बहुधा दृश्यकाव्यमेंही प्रयुक्त किया जाता है ।

कवित्त ।

श्यामरंग धारि पुनि बाँसुरी सुधारि कर, पीतपट पारि वाणी मधुर सुनावेगी । जरकसी पाग अनुराग भरे शीश बाँधि, कुंडल किरीटहूकी छवि दरशावैगी । याही हेत खरी अरी हेरति हौं बाट वाकी, कैयो बहुरूपिहूंको श्रीधर भुरावैगी । सकल समाज पहिचानैगो न केहूं भाँति, आज वह बाल बृजराज बनिआवैगी ॥

इस पद्यमें राधिकाजीका श्रीकृष्णवेष धारण करना आहार्य्यानुभाव है ।

४ सात्विक ।

सत्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले नैसर्गिक अंगविकारको सात्विकानुभाव कहते हैं, यह आठ प्रकारके होते हैं यथा—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ।

१ स्तंभ ।

शरीरके यावद्धर्म्मोंके[१] संचालित रहते भय, हर्ष और व्याधि आदिके कारण वश सहसा कर्म्मेंद्रिय गतिनिरोधको स्तंभ कहते हैं ।

---

१. सजीव शरीरधर्म्मसे ।

यथा सवैया।

ओहि कुंजनमें कमनीय छटा छरे लेत हियो अवरेखतही।
बलि बोलनि बेस चिरीगनकी मनमोहत मंजु विशेषतही॥
चिरजीवी अचानक आनिपरे नँदनंद तहाँ पग पेखतही।
परी ह्वैकलों ठाढी रही जडसी वह बालगुपालको देखतही॥

यहाँ आनंदपूर्वक कुंजकी शोभा देखते देखते श्रीकृष्णके सहसा दृष्टिगत होतेही नायिकाका जडत्वको प्राप्तहोना स्तंभ है।

२ स्वेद।

परिश्रमजन्य घर्मबिंदुको छोड़ रोमराजि संभूत जलबिंदुको स्वेद कहते हैं।

यथा कवित्त।

कज्जल कलित मुकुलित दृग लोल स्वेद, सलिल कपोल अलकावलि सनत हैं। ललित गुलाल मंजु मंडितवदन मणि कुंडन दीपति जो वितानसो तनत है। कहत किशोर कवि शिथिलित अंग अंग, भीजि मनसिज ओज आभा उफनत है। आवत झुकत गजगति मतिधीर वीर आज बलवीर देखि देखत बनत है।

यहांपर कपोलोंका जो स्वेद सलिलविलसितहोना वर्णित है सोई स्वेद है।

३ रोमांच।

हर्ष, भय एवं क्रोधादिके योगसे शरीरपर रोमके खड़े होजानेको रोमांच कहते हैं।

यथा सवैया।

कैधौं डरी तूं खरी जलजंतुते कै अँगभार सिवार भयो है।
कै नखते शिखलौं पदमाकर जाहिरै झार शृंगार भयो है।
कैधौं कछू तोहिं शीतविकार है ताहीको यो उदगार भयो है।
कैधौं सुबारिविहारहिमें तन तेरो कंदबको हार भयो है।

यहांपर जलजंतुके भयादिसे रोमटोंका खड़ा होना रोमांच है।

४ स्वरभंग।

शीतादिविकारके अतिरिक्त नैसर्गिकध्वनिमें जो विपर्य्यय पाया जाता है उसे स्वरभंग कहते हैं।

यथा जगद्विनोदे। दोहा।

हौं जानत जो नहिं तुम्हैं, बोलत अध अँखरान।
संगलगे कहुँ औरके, करिआये मदपान॥

यहांपर बातचीतमें अक्षरोंका पूर्णरूपसे उच्चारित न होना स्वरभंग है।

५ वेपथु।

हर्ष, कोप एवं भयादिके योगसे प्रतिअंगके सहसा

यथा तुलसीकृत रामायणे। दोहा।

इहिविधि कहि २ बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर॥

यहांपर श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीकी सुकुमारता तथा मार्गकी कठोरताको विचार लोगोंके चित्तमें जो शोक उत्पन्न हुआ और उसके योगसे उनके नेत्रोंसे जल आविर्भूत हुआ सोई अश्रु है।

८ प्रलय।

चेष्टानिरोधको प्रलय कहते हैं।

यथा तुलसीकृत रामायणे। दोहा।

केहरिकटि पटपीतधर, सुखमाशीलनिधान।
देखि भानुकुलभूषणहिं, बिसरा सखिन अपान॥

यहां समस्तसखियोंकी आत्मविस्मृति हो उनका निश्चेष्ट होना प्रलय[1] है।

व्यभिचारी अर्थात् संचारीभाव।

जो भाव[2] रसको विशेषरूपसे पुष्टकर जलतरंगकी नाईं

---

१ ध्यान रहे कि, स्तंभमें गतिस्तंभ अर्थात कर्म्मेंद्रियोंका निरोध और प्रलयमें चेष्टानिरोध अर्थात् ज्ञानेंद्रियके कर्म्मोंका निरोध होता है। यह उभय अवस्था निद्रित अवस्थामेंभी प्राप्त होसकती हैं। पर वहां वह इन [illegible]स्त्रीय संज्ञाओंको प्राप्त नहीं होसकता क्योंकि वहां वह मनोविकारजन्य [illegible] रहतीं।

२ रसानुकूल मनोविकारोंको भाव कहते हैं।

अनावृष्टिजन्य दुष्कालपीडित कोई मनुष्य भगव
मेघराज इंद्रसे कहता है कि, विना अन्न अब मैं दिवस क
कर काटूं ? अब तो भूखके मारे समस्त गात्र शिथिल होग
और तुम्हारी प्रार्थना भी नहीं कीजासकती । यहांपर क्षुध
जन्य शिथिलता जो वर्णित है सोई ग्लानिसंचारी है ।

३ शंका ।

अपनी दुर्नीति वा इष्टहानिके शोचको शंका कहते हैं

यथा जगद्विनोदे । दोहा ।

लगै न कहुँ व्रजगलिनमें, आवत जात कलंक ।
निरखि चौथको चांद यह, शोचत सुमुखि सशंक ॥

यहांपर चौथके चंद्रस्वरूप श्रीकृष्णको देख गोपिका
इष्ट यशकी हानि और कलंकका जो शोच वर्णित है व
शंकासंचारी है ।

४ असूया ।

परोत्कर्षकी असहिष्णुताको असूया कहते हैं ।

यथा जगद्विनोदे । दोहा ।

जैसेको तैसो मिलै, तबही जुरत सनेह ।
ज्यों त्रिभंग तन श्यामको, कुटिल कूबरीदेह ॥

यहां कूबरीपर श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका अन्य गोपिका
ओंको असहन होना जो आक्षेपसे वर्णित कियागया है सो
असूयासंचारी है ।

५ मद।

धन, रूप, यौवन और मदिरादिके सेवनसे मनमें जो सहर्षाधिक्य क्षोभ होता है उसे मदसंचारी कहते हैं।

यथा जगद्विनोदे। दोहा।

धनमद यौवनमद महा, प्रभुताको मद पाय।
तापर मदको मद जिन्हैं, को तिहिं सकै सिखाय॥

किसीपुरुषको अन्यथा कर्म्मरत देख कोई नीतिविद् कहता है कि,इस धनमद यौवन तथा प्रभुताके और मदिराके मदसे मत्तहुए दुष्टको दुराचारसे विरत होनेकी शिक्षा देनेको कौन समर्थ है? यहांपर मदकी परमोत्कर्षता मदसंचारी है।

६ श्रम।

मार्गक्रमणादि परिश्रमजन्य थकावटको श्रमसंचारी क-कहते हैं।

यथा सवैया। रामायणे।

पुरते निकसीं रघवीर वधू धरि धीर हिये मगमें डगद्वै।
झलकी भरि भाल कनी जलकी पटु सूखिगये अधराधरवै।
फिर बूझति हैं चलनोऽब किती पिय पर्णकुटी करिहे कित द्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियां अतिचारु चलीं गलच्वै

यहांपर सीताजीका मार्गजन्यपरिश्रमसे थकना श्रमसंचारी है।

७ आलस्य ।

समर्थ होनेपर भी जागरणादिके कारण उद्योगके विषयमें जो मंदता उत्पन्न होती है उसे आलस्यसंचारी कहते हैं ।

यथा जगद्विनोदे:–कवित्त ।

गोकुलमें गोपिन गुविंद संग खेलि फाग, रातिभर प्रातसमै ऐसी छविछौंडकें । देहैं भरी आरस कपोल रस रोरी भरे, नींद भरे नयन कछूक झपैं झलकें । लाली भरे अधर बहाली भरे मुखवर, कवि पदमाकर विलोके कौन ललकें । भाग भरे लाल औ सोहाग भरे सब अंग, पीक भरी पलकैं अबीर भरी अलकैं ।

यहां सखियोंके गात्रमें आलस्य भरे हुए आदि वर्णन आलस्यसंचारी है ।

८ दैन्य (विषाद.)

अभीष्टकी हानि वा अनिष्टकी प्राप्तिसे जो दुःखातिरेक होता है उसे दैन्य कहते हैं ।

यथा जगद्विनोदे:–दोहा ।

अब न धीर धारत बनत, सुरत बिसारी कंत ।
पिक पापी पीकनलगे, बगरेउ बाग बसंत ॥

---

१ ग्लानिमें बलकी क्षीणता रहती है पर इसमें बल होनेपर भी कार्य करनेकी इच्छा नहीं होती । जड़तामें काम करनेकी अक्षमता पायी जाती है पर आलस्यमें वह नहीं रहती एतावता जड़ता और ग्लानिसे आलस्य भिन्न मानागया है ।

यहांपर पतिके बिसरा देनेसे स्वकीया नायिकाको जो अत्यंत दुःख हुआ है सोई दैन्यसंचारी है।

९ चिन्ता।

इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिके विचारको चिंतासंचारी कहते हैं।

यथा कवित्त।

भोरही भुखात ह्वै हैं कंद मूल खात ह्वै हैं,
दुति कुँभिलात ह्वै हैं मुख जलजातको ।
प्यादे पग जात ह्वै हैं मग मुरझात ह्वै हैं,
थकिजैहैं घाम लागे श्यामरूगातको ॥
पंडित प्रवीन कहे धर्मके धुरीन ऐसे,
मनमें न भाख्यो पीन राख्यो प्रण तातको ।
मात कहे कोमल कुमार सुकुमार मेरे,
छौना कहूं सोवत विछौना करि पातको ॥

यहां रामचंद्रजीके वनयात्रा करनेपर कौशल्याजी उन्हें (रामचंद्रजीको) इष्ट वस्तु न प्राप्त होनेका जो विचार करती हैं सोई चिंतासंचारी है।

१०. मोह।

विरह दुःखादि चिंताजनित चित्तविक्षेपको मोहसंचारी कहते हैं।

यथा सवैया।

दोउनको सुधि है न कछू बुधि वाही पलाइमें बूडि बही है।

त्यों पदमाकर दीजे मिलाय क्यों चंग चवायनको उमही है।
आजुहीकी या दिसा दिसमें दशा दोउनकी नहिं जात कही है।
मोहन मोहि रह्यो कचकी कमकी वह मोहनी मोह रही है ॥

यहांपर श्रीराधाकृष्णका परस्पर मोहित होना जो वर्णित कियागया है सोई मोहसंचारी है ।

११ स्मृति ।

पूर्व्वानुभूत विषयोंके ज्ञानको स्मृतिसंचारी कहते हैं। यथा हनुमन्नाटके:—

कवित्त ।

चले रिपुजीत करि रीत सब शूरनकी,
जानकी लै संग मानो प्राणसे लवाइकै ।
सियासों कहत देख आयो वह ठौर जहाँ,
लछमन इंद्रजीत मारो है रिसाइकै ।
इहां नागफाँसपरी इहां हनुमंत बीर,
गिन्यो मेरो बीर मोकों दियो है जिवायकै ।
इहां काहू माथे दश काटे लंकरायहूके,
कही रघुराय बात नेक सरमायकै ॥

यहां रामचंद्रजीने पूर्व्वमें रणक्षेत्रमें जो कार्य्य किये थे उनका उन्हें पुनः ज्ञान होना जो वर्णित है सोई स्मृतिसंचारी है।

१२ धृति ।

विपत्कालमें साहस तथा सत्समागमद्वारा चित्तके दृढ करनेको धृतिसंचारी कहते हैं ।

यथा सवैया।

रे मन साहसी साहस राख सुसाहससों सब जेर फिरैंगे ।
त्यों पदमाकर या सुखमें दुखत्यों दुखमें सुख सेर फिरैंगे ॥
वैसेही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारोहू टेर फिरैंगे ।
एक दिना नहिं एक दिना कबहूं फिर वे दिन फेर फिरैंगे ॥

यहां श्रीकृष्णके वियोगसे कातर सखियोंका साहस धारण करना जो वर्णित है सोई धृतिसंचारी है।

१२ व्रीडा।

स्तुति अथवा गुरुजन मानमर्यादा वा कामादिके कारण चित्तमें जो संकोच उत्पन्न होता है उसे व्रीडासंचारी कहते हैं।

तु० कृ० रामायणेः—चौपाई।

कोटि मनोज लजावन हारे।सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुलबानी । सकुचि सीय मनमहँ मुसुकानी ॥
तिनहिं विलोकि विलोकत धरनी।दुहुँसकोच सकुचतिरवरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी।बोली मधुर वचन पिकबयनी॥
सहज सुभाय सुभग तनु गोरे । नाम लषण लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी।पियतन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।निजपति कहेउ तिनहि सियनयननि

यहां सीताजीका जो लज्जित होना वर्णित है सोई व्रीडा-संचारी है।

१४ चपलता ।

अत्यंत अनुरागादिके कारण जो अस्थिरता उत्पन्न होती है उसे चपलतासंचारी कहते हैं ।

यथा सवैया ।

कौतुक एक लख्यो हरि ह्यां पदमाकर यों तुम्हैं जाहिर की मैं।
कोऊ बड़े घरकी ठकुराइन ठाढी न घात रहै छिनकी मैं ॥
झाँकति है कबहूँ झँझरीन झरोखनि त्यों सिरकी सिरकी मैं ।
झाँकतिही खिरकीमैं फिरै थिरकी थिरकी खिरकी खिरकी मैं।

यहां अत्यंत अनुरागके कारण नायिकाका खिड़की खिड़कीमें फिरना जो वर्णित है वही चपलतासंचारी है ।

१५ हर्ष ।

उत्सवादिसमुद्भूत चित्तप्रसादको हर्ष कहते हैं ।

तु० कृ० रामायणेः–

दोहा– गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगटे प्रभु सुखकंद ।
हर्षवंत सब जहँ तहँ, नगरनारि नरवृंद ॥

यहां श्रीमद्रामचंद्रजीके जन्मोत्सवके समय जो आनंद मनाना तथा उससे लोगोंका प्रसन्न होना वर्णित है सोई हर्षसंचारी है ।

१६ आवेग ।

भयादिके कारण जो सहसा चित्तसंभ्रम होता है उसे आवेगसंचारी कहते हैं ।

यथा सवैया ।

रे मन साहसी साहस राख सुसाहससों सब जेर फिरेंगे ।
त्यों पदमाकर या सुखमें दुखत्यों दुखमें सुख सेर फिरेंगे ॥
वैसेही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारोहू टेर फिरेंगे ।
एक दिना नहिं एक दिना कबहूं फिर वे दिन फेर फिरेंगे ॥

यहां श्रीकृष्णके वियोगसे कातर सखियोंका साहस धारण करना जो वर्णित है सोई धृतिसंचारी है ।

१२ व्रीडा ।

स्तुति अथवा गुरुजन मानमर्यादा वा कामादिके कारण चित्तमें जो संकोच उत्पन्न होता है उसे व्रीडासंचारी कहते हैं ।

तु० कृ० रामायणेः—चौपाई ।

कोटि मनोज लजावन हारे।सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुलबानी । सकुचि सीय मनमहँ मुसुकानी ॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकत धरनी।दुहुँसकोच सकुचतिबरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी।बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
सहज सुभाय सुभग तनु गोरे । नाम लषण लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।पियतन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे [illegible] कहेउ तिनहि सियसयननि
यहां [illegible] ा वर्णित है सोई व्रीडा-

१४ चपलता ।

अत्यंत अनुरागादिके कारण जो अस्थिरता उत्पन्न होती है उसे चपलतासंचारी कहते हैं ।

यथा सवैया ।

कौतुक एक लख्यो हरि ह्यां पदमाकर यों तुम्हें जाहिर की मैं।
कोऊ बड़े घरकी ठकुराइन ठाढी न घात रहै छिनकी मैं ॥
झाँकति है कबहूँ झँझरीन झरोखनि त्यों खिरकी खिरकी मैं ।
झाँकतिही खिरकीमें फिरै थिरकी थिरकी खिरकी खिरकी मैं।

यहां अत्यंत अनुरागके कारण नायिकाका खिड़की खिडकीमें फिरना जो वर्णित है वही चपलतासंचारी है ।

१५ हर्ष ।

उत्सवादिसमुद्भूत चित्तप्रसादको हर्ष कहते हैं ।

तु० कृ० रामायणे:-

दोहा- गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगटे प्रभु सुखकंद ।
हर्षवंत सब जहँ तहँ, नगरनारि नरवृंद ॥

यहां श्रीमद्रामचंद्रजीके जन्मोत्सवके समय जो आनंद मनाना तथा उससे लोगोंका प्रसन्न होना वर्णित है सोई हर्ष-संचारी है ।

१६ आवेग ।

भयादिके कारण जो सहसा चित्तसंभ्रम होता है उसे आवेगसंचारी कहते हैं ।

चौपाई।

सुनत श्रवण वारिधि बंधाना। दशमुख बोलिउठा अकुलाना।
दोहा—बांधे वननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीश
सत्य तोयनिधि कंपती, उदधि पयोधि नदीश।
यहां सेतुबंधके श्रवण करतेही रावणके चित्तमें भयके
कारण सहसा जो व्याकुलता उत्पन्न होना वर्णित किया
गया है सोई आवेगसंचारी है।

१७ जडता।

हितकी प्राप्ति वा अहितके श्रवणसे चित्तमें जो सहसा
विवेकशून्यता उत्पन्न होती है उसे जडतासंचारी कहते हैं।

तु० कृ० रामायणेः— चौपाई।

वारिविलोचन बाँचत पाती। पुलकगात आयी भरि छाती।
राम लषणउर करवर चीठी। रहिगे कहत न खाटी मीठी।
यहां राम लक्ष्मणके हितपत्रके पातेही राजा दशरथके
चित्तमें जो सहसा विवेकशून्यता उत्पन्न होना वर्णित किया
गया है सोई जड़तासंचारी है।*

१८ गर्व।

बल विद्या और गुणके विषयमें सबकी अपेक्षा अपने
अधिकत्व माननेको गर्वसंचारी कहते हैं।

---

* निद्रा अपस्मार और मूर्च्छामें भी यही अवस्था होती है पर उ
ज्ञानाभाव होता है और इसमें ज्ञान रहता है। आलस्य और भी
कष्टतोभी गति रहती है पर इसमें वह यत्किंचित् भी नहीं रहती।

तु० कृ० रामायणेः—दोहा ।

जनि जल्पसि जड़ जंतुकपि, शठ विलोकु ममबाहु ।
लोकपाल बलविपुलशशि, ग्रसनहेतु सब राहु ॥
कुंभकर्ण सम बंधुमम, सुत प्रसिद्ध शक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुने, जितेउँ चराचर झारि ॥

चौपाई ।

शठ शाखामृग जोरि सहाई । बांधासिंधु यहै प्रभुताई ॥
नाँघहिं खग अनेक वारीशा । शूर न होहिं ते सुनु शठकीशा ॥
मम भुज सागर बलजल पूरा । जहँ बूडे बहु सुर नर शूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस वीर जो पाइहि पारा ॥
दिगपालन मैं नीर भरावा । भूप सुयश खल मोहिं सुनावा ॥
जोपै समरसुभट तव नाथा । पुनि २ कहसि जासु गुणगाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपुसन प्रीति करत नहिंलाजा ॥
हरगिरिमथन निरखु मम बाहू। पुनि शठ कपिनिजस्वामि सराहू।

दोहा— शूर कौन रावण सरिस,स्वकर काटि जेहि सीस।
हुते अनलमहँ बार बहु, हर्षित साखि गिरीश ॥

उक्त वर्णनमें रावणका अपने बल और विभवके विषयमें रामकी अपेक्षा अधिकत्व प्रदर्शित करना जो वर्णित किया गया है सोई गर्वसंचारी है ।

१९ विषाद ।

उपायापाय चिंताजन्य मनोभंगको विषाद कहते हैं ।

यथा तु० कृ० रामायणेः-चौपाई।

चले भरत जहँ सियरघुराई। साथ निषादनाथ लघु भाई।
मुझि मातु करतबसकुचाहीं। करतकुतर्क कोटि मनमाहीं।
मलपणसियमुनिभमनाऊं। उठिजनिअनतजाहिं तजि ठाऊं।

दोहा—मातुमते महँ मानि मोहिं, जो कछु कहहिं सो थोर
अघ अवगुण क्षमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर।

चौपाई।

जो परिहरहिं मलिनमन जानी।जो सनमानहिं सेवक मानी
मोर शरण रामहिंकी पनहीं।राम सुस्वामि दोष सब जनहीं
जग यशभाजन चातक मीना।नेम प्रेम निज निपुण प्रवीना।
अस मन गुणत चले मगजाता।सकुच सनेह शिथिल सबगाता।
फेरति मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भक्तिबल धीरज दोरी
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ
भरतदशा तिहिं अवसर कैसी।जलप्रवाह जल अलिगति जैसी
देखि भरतकर शोच सनेहू। भा निषाद तिहिं समय विदेहू

यहां भरतजी मार्गमें जो संकल्प विकल्प करते जाते कि श्रीरामजी मेरा नाम सुनकर और कहीं उठकर तो चलेजायँगे इस विचारके साथ उनका चित्त खिन्न होना फिर जब रामचंद्रजीकी भक्तवत्सलताका विचार करते हैं पुनः साहस होआता है। यही विचारसंचारी है।

२० औत्सुक्य।

किसी कार्य्यमें विलंबकी अक्षमता या मनस्तापको औत्सुक्य या उत्सुकतासंचारी कहतेहैं।

यथा तु० कृ० रामायणेः—चौपाई।

त्रिजटासन बोली करजोरी। मातु बिपति संगिनि तें मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिं सहजाई॥

यहां श्रीरामजीके मिलनेमें जो विलंब होरहा है उसका सीताजीको असहन होना और रावणकी कटुउक्तिसे उन्हें जो मनस्ताप होना जो वर्णित है सोई उत्सुकतासंचारी है।

२१ निद्रा।

चित्तके निमीलनको निद्रासंचारी कहते हैं।

यथा तु० कृ० रामायणेः—चौपाई।

विविध बसन उपधान तुराई। क्षीरफेन मृदु विशद सुहाई॥
तहँ सियरामशयननिशिकरहीं।निजछबिरतिमनोजमदुहरहीं॥
तेइ सिय राम साथरी सोए। श्रमित बसन बिन जाहि न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरवासी। सखा सुशील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिनहिं प्राणकी नाईं। महि सोवत सोइ राम गोसाईं॥

यहां श्रीराम सीताका जो शयनकरना वर्णित है सोई निद्रासंचारीहै।

२२ अपस्मार।

दुःख मोहादिके कारण कंपितहो: धरतीपर गिर मुखसे और श्वास परित्याग करनेको अपस्मारसंचारी कहते हैं।

यथा सवैया।

बोलै बिलोकै न पीरीगयी पारिआई भलेही निकुंज मँझारन।
ऐसी अनेसी बिलोकनि रावरी होत अचेत लगी कछु बारन।
फेन तजै मुखते पटकै कर जौन कियो जू बिथा निरवारन
याहि उठाय सबै सखियां हम जाती चलीं यशुदापहँ द्वारन

यहां नायिकाका एकाएक व्याकुल हो मुखसे फेन तजना जो वर्णित है सोई अपस्मार[1]संचारी है।

२३ सुप्ति।

निद्रितावस्थामें किसीवस्तुके ज्ञान होनेको सुप्ति व स्वप्नसंचारी कहते हैं।

यथा तु० कृ० रामायणेः— चौपाई।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। रामचरण रत निपुण विवेका
सबहिं बुलाय सुनायसि सपना।सीतहि सेय करौ हित अपना
सपने बानर लंकाजारी। यातुधान सेना सब मारी
खर आरूढ नगन दशशीसा। मुंडितशिर खंडित भुजबीसा
इहिविधि सो दक्षिणदिशि जाई। लंका मनहुँ विभीषण पाई
नगर फिरी रघुबीर दुहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई
यह सपना मैं कहौं विचारी। होइहिं सत्य गये दिनचारी

---

[1] वास्तवमें अपस्मार है तो रोगही पर विप्रलंभशृंगारमें यदा प यह उत्पन्न होजाताहै एतावता उतनेहीके लिये इसकी संचारीमा गणना कीगयी है। कोई २ मूर्च्छाका अंतर्भाव इसीमें करते हैं।

यहां निद्रितकी निद्रितअवस्थामें रावणकी भावीदशाका ज्ञान होना जो वर्णित है सोई मति वा स्वप्नसंचारी है।

२४ विबोध।

निद्रा दूर होने इत्यादि निद्राकी प्रतिकूल अवस्थाको विबोधसंचारी कहते हैं।

यथा तु० कृ० रामायणेः—दोहा।

उठे लखन निशिविगत सुनि, अरुण शिखाधुनि कान।
गुरुते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान॥

यहां राम लक्ष्मणजीका सोकर उठना जो वर्णित है सोई विबोधसंचारी है।

२५ अमर्ष।

दूसरेके अहंकारको नष्ट करनेकी उत्कट इच्छाको अमर्ष संचारी कहते हैं।

यथा कवित्त।

हैतो तैं न मोसो कहूं नेकहूं डरात हुतो,
हैतो अब हौंहूं तोहिं नेकहू न डरिहौं।
...कर प्रचंड जो परैगो तो,
... तोतों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलोचलु विचल न बीचहीतें,
नीच तो कुटुंबको कचारिहौं।

टूटेहरा छराछूटे सबै सरबोर भई अँगिया रँगराती ।
को कहतो यह मेरीदशा गहतो न गोविंद तो हौं बहिजाती॥

जलविहारके कारण गोपीके आभूषण टूटगये पर इस बातको छिपानेके लिये उसने चतुरतापूर्वक यह कहा कि, यदि आज श्रीकृष्ण मुझे न पकडलेते तो मैं यमुनामें बहजाती। यहां गोपीने चतुराईसे अपने बहजानेकी बात कहकर जलक्रीडाका जो गोपन किया है सोई अवहित्थसंचारी है ।

२७ उग्रता ।

स्वदोषकीर्त्तन वा स्वार्थापहरणसे उत्पन्न होनेवाली निर्दयताको उग्रता कहते हैं ।

यथा कवित्त ।

देखनजो पाउं तो पठाऊं यमलोक हाथ,
दूजो न लगाऊं वार करो एक करको ।
मीजमारौं उरते उखार भुजदंड हाड,
तोड़डारौं वर अविलोक रघुवरको ॥
काशीराम द्विजके रिसात भहरात राम,
अति थहरात गात लागत है धरको ।
सीताको संताप मेट प्रगट प्रताप कीनो,
कोहै वह आय चाप तोरो जिन हरको ॥

हरको दंडस्वरूप स्वार्थको नष्ट करनेवालेके विषयमें परशुरामजीने जो कहा है कि, यदि में उसे देखपाऊँ तो तत्क्षण यमलोकको पहुँचादूं ।

मेरा।

इतनेहीमें संतोष नहोसकेगा अतः उसे मैं मींजडालूंगा सके अंगको भंग करडालूंगा आदिसो जो निर्दयता वातें कही हैं सोई उग्रतासंचारी हैं।

२८ मति।

तत्त्वानुसंधानद्वारा जो ज्ञानलाभ होता है उसे म चारी कहते हैं।

यथा तु० कृ० रा० चौपाई।

नरतनुपाय विषय मनदेहीं। सुधापलटि विषते शठ लेहीं
यहा तत्त्वानुसंधानद्वारा विषयको जो विष निश्चित हैं सोई मतिसंचारी है।

२९ व्याधि।

मनोविकारोत्पन्न ज्वरादिरोगको व्याधिसंचारी कह

यथा कवित्त।

दूरहीते देखत विथा मैं वा वियोगिनिकी आयीभले हां मैं लाज मढि आवैगी। कहैं पदमाकर सुनोहो घन जाहि चेतत कहूं जो एक आहिकढि आवैगी॥ सरस फो न मूरत लगैगी देर येती कछु जुलमिन ज्वाला आवैगी। ताते तन ता की कहीं मैं करा दाव मेरे

उक्तपद्यमें विरहाग्निसंजात संतापका जो वर्णन है सोई व्याधिसंचारी है।

३० उन्माद।

अविचारित आचरण तथा चेतनाऽचेतनादि तुल्य वृत्तिको उन्मादसंचारी कहते हैं।

यथा तु० कृ० रामायणेः—चौपाई।

हा गुनखानि जानकी सीता। रूप शील व्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाये बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥

यहां रामचंद्रजीका सीताविरहसे व्याकुलहो जड चेतनके विषयमें तुल्यवृत्ति धारणकर लता वृक्षोंसे सीताजीके विषयमें पूछाकरना उन्मादसंचारी है।

पुनरपि यथा जगद्विनोदेः—दोहा।

छिन रोवति छिन हँसि उठति, छिन बोलति छिन मौन।
छिन [illegible] भई दशा धौं कौन॥

यहां क्षणमें रोना क्षणमें हँसना क्षणमें मौन रहनादि अविचारपूर्वक कार्योंका वर्णन उन्मादसंचारी है।

३१ मोह।

[illegible] मोहसंचारी कहते हैं।

यथा तु० कृ० रा० चौपाई।

रचि दृढ़ दारुण चिता बनाई। जनु सुरलोक निसैनी लाई॥
करिप्रणाम सबजन परितोषी। धीरज धरसि तासुमति पोषी॥
शिरभुजधरि बैठी करिआसन। भइजनुयोगसिद्धिकर वासन॥
दोहा—देत अनलज्वाला बढ़ी, लपट गगन लगि जाय।
लखी न काहू जात तिहिं, सुरपुर पहुँची धाय॥

यहाँ पतिप्राणा सुलोचनाका अपने पतिके साथ प्राण त्यागकर सहगमन करना जो वर्णितहै सोई मरणसंचारी है।

३२ त्रास।

आकस्मिकभयोत्पन्न चित्तविक्षेपको त्राससंचारी कहते हैं।

यथा रसप्रबोधे।

दोहा—देश देशके पुरुष सब,चलत रावरी बात।
यों कांपत ज्यों बाततें, रूख रूखके पात॥

हाँ किसी वीरपुरुषको उसका अनुचर कहताहै कि, आपका नाम सुनतेही देश देशके लोग सहसा वृक्षपत्रकी नाई कंपायमान होते हैं।

यहां वीरपुरुषकी शूरताके भयसे लोगोंका सहसा कंपितहोना जो वर्णित है सोई त्राससंचारी है।

पुनरपि यथा हनुमन्नाटके कवित्त।

कथा हैं निदानकी न रद सन्मानकी,
न मानन पमानकी न कथा गहानकी।

रही न गुमानकी न कहूँ चढ जानकी,
न पौरुप प्रमाणकी न कथा खानपानकी।
वेद न पुराणकी न सुनिये सियानकी,
हौं झूठो जो कहौं तो सौंह रघुकुलभानकी।
रामडर रावणके नगर डगर घर,
वगर वजार आज कथा भाज जानकी ॥

इस कवित्तमें रामचंद्रजीके भयसे राक्षसनाथ रावणकी प्रजाके चित्तमें जो विक्षेप होना वर्णित कियागया है सोई त्रासंसंचारी है।

३२ वितर्क।

शंकानिवारणार्थ विचार करनेको वितर्कसंचारी कहते हैं।

यथा कवित्त।

जोहौं कहौं रहिये तौ प्रभुता प्रगट होत,
चलन कहौं तौ हितहानि नाहिं सहनै।
भावै सु करहु तौ उदासभाव प्राणनाथ,
संग लैचलै तो कैसे लोकलाज वहनै।
केसो केसो रायकीसौं सुनहु छबीले लाल,
चलेही वनत जोपै नाहीं राज रहनै।
तुमहीं सिखाओ सीख सुनहु सुजान प्रिय,
तुमही चलत मोहीं जैसी कछु कहनै ॥

प्रियके चलते समय यदि मैं कहूं कि, आप मतजाइये तो प्रभुता पायीजाती है.यदि कहूं कि,जाइये तो संयोगरूप हितकी

हानि होती है. यदि कहूं कि, तुम्हें जैसा जानपडे वैसा करो तो उदासीनता बोध होती है, साथ ले चलनेको कहूँ तो लोक लाजका भय जान पड़ता है. एतावता यही समुचित जानपड़ता है कि, आपके चलते समय मुझे क्या कहना चाहिये सो कृपाकर आपही मुझे बतादीजिये । यहां अपनी शंका निवारणार्थ जो विचार किये गये हैं सोई वितर्कसंचारी है ।

इन ३३ व्यभिचारीभावोंके अतिरिक्त किसी २ ग्रंथकारने छद्म अर्थात् कपटकोभी एक व्यभिचारीभाव माना है ।

मात्सर्य्य १, उद्वेग २, दंभ ३, ईर्ष्या ४, विवेक ५, निर्णय ६, क्षमा ७, उत्कंठा ८, धाष्टर्यादि अपरभावभी सब रसोंमें पायेजाते हैं । तथापि व्यभिचारीभावोंकी संख्याको ग्रंथकारोंने ३३ ही स्थिरकर रक्खा है। इस संख्याको ज्योंकी त्यों रखनेके हेतु अन्यभावोंको इसीके भेदांतर्गत मानलेते हैं। जैसे मात्सर्य्यको असूया, उद्वेगको त्रास, दंभको अवहित्थ, ईर्ष्याको अमर्ष, विवेक और निर्णयको मति, क्षमाको धृति, उत्कंठाको औत्सुक्य और धाष्टर्यको चपलतांतर्गत माननेके लिये रसतरंगिणीकारकी सम्मति पायीजाती है ।

मानसशास्त्रके नियमानुसार इन ३३ भावोंमें केवल मनोविकार थोड़ही पायेजाते हैं । तोभी आलंकारिकोंकी प्रथानुसार जो जो विकार रत्यादिभावको परिपुष्ट करनेके

लिये उपयोगी जानपड़ते हैं उन सबकी संचारीभावोंमेंही गणना की जाती है और उस गणनाकी संख्या एकवार जो ३३ स्थिर होचुकी है वह आजलों वैसीही निष्कंप वनी है। उसमें हेरफेर करना प्रचंड साहसका काम है। इसछोटेसे ग्रंथ में उसकी चर्चा करना अनुचित जान हम उसे योंही छोड देते हैं।

इन ३३ व्यभिचारीभावोंमेंसे कईभाव ऐसे हैं कि, जो एकके विभाव और वही दूसरेके अनुभाव होते हैं। जैसे ईर्ष्या निर्वेदका विभाव है और वही असूयाका अनुभावभी है. सेही चिंता निद्राका विभाव और औत्सुक्यका अनुभाव है इसीप्रकारसे अन्यभावोंके विषयमेंभी विचार करलेना चाहिये।

जिस रसमें जो व्यभिचारीभाव पायेजाते हैं उनका आगे यथास्थान वर्णन कियाजायगा ।

स्थायीभाव।

स्थायीभावका सामान्य लक्षण पीछे उल्लिखित होहीचुक है। अब यहां उसके विशेषधर्मकी आलोचना कीजाती है

जो भाव (मनोविकार) वासनात्मक होते हैं औ चित्तमें चिरकाललो विद्यमान रहते हैं और जो अपने उ भवके अनंतर सजातीय वा विजातीय भावोंके योगसे नष्ट न होते किंतु उन्हें अपनेमें लीन करते हैं और जो विभावादि

१ रति संज्ञक स्थायीभावसे "		१ शृंगाररस	होता है।
२ हास "	"	२ हास्य	" "
३ शोक "	"	३ करुण	" "
४ क्रोध "	"	४ रौद्र	" "
५ उत्साह "	"	५ वीर	" "
६ भय "	"	६ भयानक	" "
७ जुगुप्सा "	"	७ बीभत्स	" "
८ विस्मय "	"	८ अद्भुत	" "
९ निर्वेद "	"	९ शांत	" "

साहित्यदर्पणकर्त्ता महापात्रजीने स्नेहको स्थायीभाव मान उससे वत्सलनामक १० वाँ रस माना है। रुद्रटने अपने काव्यालंकारमें प्रेयान्नामका एकरस और भी लिखा है। मराठी भाषाके सचेसपूत विद्यापारदर्शी स्वर्गवासी श्रीयुत पंडित विष्णु कृष्ण शास्त्रीजी चिपलुणकरमहाशयने उदात्तनामका रस माननेके लिये एक स्थानपर परामर्ष दिया है।

तात्पर्य्य भिन्न २ ग्रंथकर्त्ताओंने स्थायीभावोंकी संख्या भिन्नप्रकारकी लिखी है। परंतु तनिक विचारकरनेसे ज्ञात होता है कि, रसोंकी संख्याका चढाना वा घटाना लेखककी इच्छामात्रपर निर्भर नहीं है क्योंकि रससंज्ञाको प्राप्त होनेके पूर्व स्थायीभावकी परमावश्यकता है। और स्थायीभावकी स्थिति हरएक मनोविकारमें नहीं पायीजासकती। एतावता जिन मनोविकारोंमें उक्त चार धर्म्म पाये जासकते हैं वेही

द्वितीय धर्म्म—सजातीय वा विजातीय भावोंके योगसे नष्ट न होना है। रतिका रति, शोकका शोक और हासका हास इत्यादि भाव सजातीय माने जाते हैं।और इसके व्यतिरेक अपर स्थायीभाव विजातीय माने जातेहैं। जैसे धनुष्यभंगके पश्चात् जनकसभामें उपस्थित हो परशुरामजीने कहा कि, इस धनुष्यको तोड़नेवाला मेरा सहस्रबाहुतुल्य शत्रु है अर्थात् उसके लिये परशुरामजीके चित्तमें क्रोध उत्पन्न हुआ पर लक्ष्मणजीकी कटुउक्ति सुन उनके लिये भी परशुरामजीके चित्तमें क्रोध उत्पन्न हुआ और जबलों उन्हें रामचंद्रजीके विषयमें यथार्थ ज्ञाननहीं हुआ तबलों लक्ष्मणजी विषयक क्रोध सजातीय मनोविकारके कारण धनुष्यभंजकविषयक उनका क्रोध नष्ट नहीं हुआ। वैसेही शाकुंतलनाटकमें शकुंतलाविषयक रतिके योगसे वसुमतिविषयक रति नष्ट नहीं हुई। और रत्नावली नाटिकामें वत्सराजाके चित्तमें वासवदत्ताविषयक जो रतिभाव विद्यमान था वह तत्सजातीय सागरिकाविषयक रतिभावके योगसे नष्ट नहीं हुआ। ठीक यही बात विजातीयभावोंके विषयमें भी चरितार्थ होती

१केवल भाषा जाननेवाले सहृदयपाठक राजा लक्ष्मणसिंहकृत शकुंतलाके अनुवाद तथा संवत् १९५५ में हिंदी बंगवासीद्वारा उपहारमें वितरित रत्नावलीनाटिकाके अनुवादद्वारा अपनी मनस्तुष्टि करसकते हैं। यह उभय अनुवाद बहुत अच्छे हैं।

है। अनंतर जलसेचनादिद्वारा जिसप्रकार वृक्षांकुर वृद्धि-लाभकर शाखा, पल्लव, पुष्प और फल युक्त हो वृक्षरूपको प्राप्त होता है उसीप्रकारसे यह स्थायीभाव विभावादिकों-द्वारा विस्तृत हो रसरूप होता है।

इसके उदाहरणस्वरूपमें परशुरामजीका नामोल्लेख कियाजाता है। ज्योंही परशुरामजीने शिवधनुष्यभंगकी ध्वनि सुनी त्योंही उनके चित्तमें गुप्तभावसे प्रज्वलनरूप अल्पविकार उत्पन्न हुआ। पश्चात् मखशालामें टूटेहुए धनुष्यके खंडोंको देख वह विकार विस्तृत हुआ और आगे लक्ष्मणजीके उत्तर प्रत्युत्तरद्वारा वह यहांतक बढा कि, परशुरामजी उन्हें वध करनेको उद्यत होगये। सारांश इसप्रकारसे स्थायीभाव विभाव अनुभाव और व्यभिचारीभावोंद्वारा परिपुष्ट हो स्थायीभावसंज्ञाको छोड़ रससंज्ञाको प्राप्त होता है।

नीचे नवरसोंके स्थायीभावोंका सोदाहरण वर्णन किया जाता है।

१ रति–(प्रीति)

परस्पर संमिलनकी इच्छासे नायक नायिकाके चित्तमें जो अपूर्ण एवं गुप्त प्रीति उत्पन्न होती है उसे रति[१] कहते हैं।

यथा रुक्मिणीपरिणये:–सवैया।

की छविकी छवि है यदुनंदन की है प्रभाकी प्रभा सुखदाई।

१ इसके उत्तम, मध्यम और अधम, यह तीन भेद हैं।

रूपगुमान गिराको गयो ताकि त्योंही शची रति दीन्हयों गँवाई
खोजी त्रिलोकमें मैं उपमा रघुराज सुनी कहुँ नेकु न पाई ।
रावरेकी वह मोहनि मूरति रुक्मिणि रूप व्है धौं महिआई ॥

दोहा—सुनि यदुपति मुनिपति वचन, तनमन अतिहरपाय ।
रहे मौन तहँ महिचितै, मंदमंद मुसुक्याय ॥

उक्तपद्यमें नारदजीद्वारा रुक्मिणीजीकी सुंदरता श्रवण कर कृष्णजीके चित्तमें उनके विषयमें जो अल्प रति (प्रीति) गुप्तभावसे उत्पन्न हुई सोई स्थायीभाव है। "रहै मौन तहँ महि चितै" पदोंद्वारा रतिका गुप्तभाव व्यंजित किया गया है । यही स्थायीभाव आगे विभावादिकोंके योगसे परिपुष्ट हो रसरूप हुआ है ।

यथाः—चौपाई ।

लखियदुपतिद्विजपतिसोंबोले।शशिअरुरुक्मिविमुखचिततोले।
रुक्मिणि मुख समता नहिं पावै । ताते मोहिं विधु विरहबढावै ॥
और न यह मरीचि मुद देही।बिन रुक्मिणि मम सुख हरिलेही॥
यदपि सुधाकर नाम कहावै । तदपि विरह विरहिन उपजावै ॥
चंद्रमंद मुखसम नहिं पैहै । यह मलयुत वह निर्म्मल ह्वैहै ॥
कहुँ२ शकुन विहँग ध्वनि करहीं।तेइ मम उर भरोस मन भरहीं॥
शिष्टी शनक परै सुनि काना । बिजै हेत मम मन द्विजयाना॥

सोरठा—पै हरिनी पतिसंग, रही सोय सुखसों सनी ।
करहिं मोर चित भंग, ललचावहिं रुक्मिणि मिलन॥
दोहा—जे पल बीतत पंथ महँ, ते युग सरिस सिराहिं ॥
हरिहिय उत्कंठा महा, रुक्मिणि कब दरशाहिं॥

पिछले पद्योंमें कृष्णजीके चित्तमें जो रतिनामक स्थायी-भाव उत्पन्न हुआ था सोई चंद्र तथा शकुन दर्शनादि विभावों-द्वारा उद्दीपित हो उत्कंठादि अनुभावोंद्वारा प्रगटित हो यहां रससंज्ञाको प्राप्त हुआ है ।

२ हास ।

विचित्र वचन तथा रूपकी रचनासे चित्तमें जो आनंद और उससे परिमित हँसी उत्पन्न होती है उसे हास कहते हैं।

अतिउदार करतूतिदार सब अवधपुरीकी वामा ।
खीरखाय पैदासुत करतीं पतिकर कछु नहिं कामा ॥
सखी वचन सुनते; रघुनंदन बोले मृदुमुसकातें ।
आपनि चलन छिपावहु प्यारी कहहु आनकी बातें ॥
कोउनहिं जन्मैं मातु पिता बिन बँधी वेदकी नीती ।
तुम्हरे तौ महिते सब उपजैं अस हमरे नहिं रीती ॥

यहां सखियोंकी वचनरचना सुन रामचंद्रजीके चित्त-में जो आनंद हुआ और जो परिमित हँसी अर्थात् स्मित-द्वारा व्यक्त हुआ सोई हास स्थायी है ।

सीसजटा शशिवदन सुहावा।रिसवस कछुक अरुणह्वै आवा ॥

यहां शिवधनुष्यभंगकी ध्वनिसुन परशुरामजीके चित्तमें जो अल्पक्रोध उत्पन्न हुआ सोई क्रोध स्थायी है क्रोधकी अल्पता अंतिम पंक्तिके 'कछुक' शब्दद्वारा व्यक्त कीगयी है।

५ उत्साह ।

दान दया और शूरतादिके योगसे चित्तमें जो उत्तरोत्तर (अर्थात् पहिले थोडा फिर अधिक) जो मनोविकार बढता जाता है उसे उत्साहस्थायी कहते हैं ।

यथा कवित्त

इत कपि रीछ उत राछसनहीकी चमू, डंका देत बंकागढ लंकाते कढैलगी। कहै पदमाकर उमंड जगहीके हित, चित्तमें कछूक चोपचावकी चढैलगी ॥ बातनिके बाहियेको करमें कमान कसि, धाई धूरधान आसमानमें मढैलगी। देखतै बनहि दुहूं दलकी चढाचढीमें, रामदगहूपै नेक लाली जो चढैलगी ॥

यहां युद्धोपकरण देख शूरताके कारण वीरोंके चित्तमें थोड़ाथोड़ा जो चाव बढ़ना वर्णित है सोई उत्साहस्थायी है। उक्तपद्यमें चावकी परिमितता कविने 'कछूक' तथा 'नेक' शब्दोंद्वारा व्यक्त की है ।

६ भय ।

विकृतशब्द चेष्टा एवं जीवादिके योगसे चित्तमें जो किंचित् व्याकुलता तथा शंकादि मनोविकार उत्पन्न होते हैं उन्हें भयस्थायी कहते हैं ।

दोहा-नलकृत पुललखि कछुक भे,चकित चित्त सुरराव।
राम पादनत भे सबहिं, सुमिरि अगस्त्य प्रभाव॥

यहां अपारसमुद्रपर नल नीलद्वारा अभूतपूर्व्व सेतुरचनाको देख इंद्रादिदेव प्रथम जो किंचित् चकित होना वर्णित है सोई आश्चर्यस्थायी है।

९ निर्वेद।

विशेष ज्ञान वा परिश्रमकी विफलतादिद्वारा संसारके विषयमें जो किंचित् तिरस्कृति प्रमुख मनोविकार उत्पन्नहोता है उसे निर्वेदस्थायी कहते हैं।

यथा तु० कृ० दोहावली।

दोहा—हृदय कपट वरवेषधरि, वचन कहैं गढ़िछोलि।
अबके लोग मयूरज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि॥

मयूर समान मनोहर वेष धारणकर मधुरी वाणी बोलनेवाले स्वार्थांध हतबुद्धि कलिपुरुषोंकी कपट लीला तथा उनके जघन्य आचरणोंको देख उनसे पुनः मिलनेके विषयमें गोस्वामीजीको यहां जो किंचित् तिरस्कार उत्पन्न हुआ है वही निर्वेदस्थायी है।

उक्त उदाहरणोंद्वारा विवेकी पाठकोंको लक्षित होचुका होगा कि, स्थायीभावोंमें पूर्वोल्लिखित चार धर्म्म अवश्यही [illegible] हैं। यह धर्म्मचतुष्टय संचारीभावोंमें नहीं पाया जाता [illegible] न वे स्थायीभाव संज्ञाको प्राप्त होसकते हैं और न [illegible] संज्ञा को प्राप्त होसकते हैं।

वरुणपाश मनोजधनु हंसा। गज केहरि नित सुनत प्रशंसा।
सुनुजानकी तोहिं बिनु आजू। हर्षे सकल पाइ निजराजू॥
किमिसहिजातअनखतोहिंपाहीं। प्रियावेगिप्रगटसिकसनाहीं॥

उक्त पद्यमें आश्चर्य और रति दोनोंभाव प्रतीत होते हैं, परंतु रति प्रधान है, अतः वह यहां स्थायीभाव है। और आश्चर्य्य रतिकी पोषकता करता है अतः वह संचारीभाव है।

इसके विपरीत एक उदाहरण नीचे और दिया जाता है:—

यथासवैया।

देखत क्यों न अपूरव इंदुमें द्वै अरविंद रहे गहिलाली।
त्यों पदमाकर कीर वधू इक मोती चुगै मनो व्है मतवाली॥
ऊपरसे तम छायरह्यो रविकी दब तेन दबै खुलिख्याली।
यों सुनि बैन सखीके विचित्र भये चित चक्रितसे बनमाली॥

इस पद्यमें आश्चर्य्य प्रधान है और रति उसकी परिपुष्टता करती है अतः वह यहां संचारीभाव है। ऐसेही पाठकगण औरभी अन्यत्र विचार लेवें।

यहांलों स्थायीभावकी आलोचना की गयी। विभाव अनुभाव संचारीभाव और स्थायीभावका यहांलों विस्तृत वर्णन किया गया। इन विभावादिकोंके विषयमें ए बात विशेषरूपसे ध्यानमें धारण करने योग्य है कि, विभावादिक जैसे उत्तेजक वा मंद होंगे वैसेही मनोविकार

नवरसोंका कोष्ठक।

सं.	रस	स्थायीभा	आलंबनविभाव	उद्दीपनविभाव	अनुभाव	व्यभिचारीभाव	देवता	वर्ण
१	श्रृंगार	रति	नायक नायिका	सखी सखा वन बाग विहार	मुसक्याना हावभावादि अपर विनोद	उन्मादिक	कृष्ण	श्याम
२	हास्य	हास	कुरूपाकृति पुरुषवा स्त्री जिसे देख हँसी आवे	कुरूपाकृति पुरुषका कूदना फांदना	विलक्षण प्रकारसे हँसना	हर्ष चपलतादि	प्रमथपति	श्वेत
३	करुण	शोक	शोच्य अर्थात् जिसके कारण शोक होता है जैसे मृत	शोच्यकी दाहादिक्रिया	रोनादैवनिंदाधरतीपर गिरना	निर्वेद मोह जडता अपस्मार चितादि	वरुण	कबूतर गाकस.
४	रौद्र	क्रोध	शत्रु	शत्रुचेष्टा	भ्रूभंग होटचबाना नेत्रोंका आरक्त होना	गर्व चपलता वमता मोह	रुद्र	रक्त
५	वीर	उत्साह	जिसपर अधिकार प्राप्त करना है तो	आलंबनकी चेष्टा	सैन्यादिका अनुधावन	अंगस्फुरण नेत्रोंकी लालिमा धैर्य गर्व	इंद्र	गौर
६	भयानक	भय	भयंकर दर्शन	आलबनके घोरकर्म	कंपादिक	वैवर्ण्य गद्गद भाषण	यम	श्याम
७	बीभत्स	जुगुप्सा ग्लानि	रक्त मांस अस्थि	रक्तमांसादिका सडना उसमें जी पड़ना	नाक मूँदना रोमांच होना	मोह असूया मूर्च्छा	महाकाल	नील
८	अद्भुत	विस्मय आश्चर्य	लोकोत्तर वस्तु	आलंबनकी महिमा	रोमांच कंप	वितर्क निर्वेद मोह	ब्रह्मा,	पीत
९	शांत	शमनिर्वेद	सत्संगति गुरुसेवा	पुण्याश्रम तीर्थक्षेत्र रमणीय अरण्य	रोमांचादि	धृति मति हर्ष भूतदया	नारायण	शुभ्र

पश्चात् वे इस विषयका पूर्णज्ञान एतद्विषयक अपरभाषाग्रंथों-द्वारा प्राप्त करसकते हैं ।

नायक ।[1]

रूप यौवन तथा विद्यादि गुणसंपन्न पुरुषको नायक कहते हैं । इसके तीन भेद हैं अर्थात् पति, उपपति और वैशिक ।

१ पति—यथाशास्त्र विवाहित पुरुषको पति कहते हैं । इसके प्रधान चार भेद हैं अर्थात् १ अनुकूल, २ दक्षिण, ३ शठ और ४ धृष्ट ।

१ अनुकूल ।

जो पुरुष शास्त्रविहित रीतिके अनुसार विवाहित एकही स्त्रीमें अनुरक्त रहता है और दूसरी स्त्रीकी इच्छा नहीं करता उसे अनुकूलपति कहते हैं ।

२ दक्षिण ।

जो पति अनेक स्त्रियोंपर तुल्य प्रीति रखता है उसे दक्षिणपति कहते हैं ।

३ शठ ।

जो पति छलसे अपराध छिपानेमें चतुर होता है उसको शठ कहते हैं ।

४ धृष्ट ।

जो पति दोषके लिये तिरस्कृत किया जानेपरभी अपनी

---

१ नायक और नायिकाके विस्तृत भेदोंका ज्ञान रसप्रबोध जगद्विनोद और रसकुसुमाकरादि ग्रंथोंसे भलीभांति प्राप्त होसकता है ।

नम्रता और निर्लज्जता प्रदर्शित करता है उसे धृष्ट कहते हैं।

२ उपपति–परस्त्रीगामी नायकको उपपति कहते हैं।

३ वैशिक–गणिकानुरक्त नायकको वैशिक कहते हैं।

नायिका।

जिस सर्व्वांगसुंदर रूपवती स्त्रीको देख वा उसके गुण श्रवणकर चित्तमें कामवासना उत्पन्न होतीहै उसको नायिका कहते हैं। नायिकाके धर्म्मानुसार तीन भेद हैं, अर्थात् स्वकीया, परकीया और सामान्या। वयःक्रमानुसारभी तीन भेद हैं यथा–मुग्धा, मध्या और प्रौढा, और अवस्थानुसार दश भेद हैं।

अर्थात् स्वाधीनपतिका, खंडिता, अभिसारिका, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता, प्रवत्स्यत्पतिका और आगतपतिका। अब नीचे इनप्रधान २ भेदोंकी व्याख्या दीजाती हैं।

१ स्वकीया।

निजपतिहीमें अनुरक्त रहनेवाली नायिकाको स्वकीया नायीका कहते हैं।

२ परकीया।

गुप्तभावपूर्व्वक परपुरुषासक्त नायिकाको परकीया नायिका कहते हैं।

---

१ नायिकाभेदका पूर्णज्ञान नायक विषयक टिप्पणीमें दियेहुए ग्रंथोंके अतिरिक्त रसमीमांसविनोद तथा काव्यपुष्पकल्पतरुसे भी ज्ञात होसकताहै।

३ सामान्या ।

केवल धनप्राप्तिकी इच्छासे प्रीति करनेवाली नायिका को सामान्या वा गणिकानायिका कहते हैं ।

१ मुग्धा ।

जिस नायिकाके अंगमें तारुण्यकी झलक जान पडने लगती है उसको मुग्धानायिका कहते हैं ।

२ मध्या ।

जिस नायिकाकी अवस्थामें लज्जा और कामजन्य मनोविकारकी समानता पायी जाती है उसको मध्यानायिका कहते हैं ।

३ प्रौढा ।

अखिल कामकलाचतुर नायिकाको प्रौढानायिका कहते हैं ।

अवस्थानुसार भेद ।

१ स्वाधीनपतिका ।

प्रियको अपने वशमें करलेनेवाली नायिकाको स्वाधीनपतिकानायिका कहते हैं ।

२ खंडिता ।

अन्यसंभोगजनित विशेष चिह्नयुक्त नायकके अत्यंत विलंबसे घर आनेपर कुपित होनेवाली नायिकाको खंडितानायिका कहते हैं ।

१० आगतपतिका ।

प्रियके विदेशागमनसे प्रसन्न होनेवाली नायिकाको आ
गतपतिकानायिका कहते हैं ।

१ शृंगाररसकालक्षण ।

नायक नायिकाके परस्पर समागमद्वारा जो कामविप
क अनिर्वचनीय आनंद उत्पन्न होताहै उसे शृंगार कहते है
अथवा विभावादिकोंकी सहायताद्वारा रतिरूप स्थायीभ
जिस उचित एवं परिपूर्णावस्थाको प्राप्त होताहै उसे शृंग
कहत हैं इसके प्रधान भेद दो हैं अर्थात् १ संभोगशृंगार औ
२ विप्रलंभ शृगार ।

१संयो (भो)गशृंगार।

नायक नायिकाके परस्पर समागमसे परस्परको ज
प्रणयजन्य आनंद प्राप्त होता है उसे संयोगशृंगा
कहते हैं । इसका स्थायीभाव रति है । नायकक
नायिकाके विषयमें यदि रति उत्पन्न हो तो वहांप
आलंबन विभाव. नायिका आलंबनविभाव मानी जायगी औ
नायिकाको यदि नायकके विषयमें रति उत्पन्न

---

१ ध्यान रहे कि,नायक नायिका परस्परके प्रणयबद्ध भलेही हों पर उनप
प्रणय यदि अगम्यागम्य दोषयुक्त होगा तो वह उचित न होनेके कार
वहां शृंगाररस न होसकेगा । वैसेही एकका प्रणय यदि अधिक और दूस
रेका यदि न्यून हो तो वहभी अपरिपूर्णताके कारण शृंगाररससंज्ञाको प्रा

कि, वह इनका वर्णन न करे क्योंकि इनके वर्णनद्वारा रसभंग होजाता है। पूर्वोक्त आठ सात्त्विकभाव भी यथावसर संयोगशृंगार तथा अपर रसोंमें आतेहैं। अब नीचे संयोगशृंगारका उदाहरण दियाजाताहैः—

सवैया ।

जातिहुती निज गोकुलको हारि आयो तहां लखिकै मग सूना ।
तासों कह्यो पदमाकर हौं अरे साँवरे बावरे तैं हमैं छू ना ॥
आजुधौं कैसी भई सजनी उत वा विधि बोल कढोई कहूं ना ।
आनिलगायो हियेसों हियो भरिआयो गरो कहि आयो कछूना ।

यहां नायिकाके दर्शनद्वारा नायकको रति उत्पन्न हुई है अतः यहांपर स्थायीभाव रति है, और आलंबनविभाव नायिका है उद्दीपन विभाव सूनीगली अर्थात् निर्जनप्रदेश और नायिकाका अपने होकर स्पर्शकरनेके लिये निषेध करना है। नायकका नायिकाको हृदयसे लगालेना तथा नायिकाके मुखसे शब्दका न निकलना और उसके कंठका भरिआना यथाक्रम स्तंभ तथा स्वरभंग सात्त्विकानुभाव हैं। सारांश नायिकाको देख नायकके मनमें जो रतिभाव उत्पन्न हुआ था सो निर्जनप्रदेशसे उद्दीपित हो नायिकाके स्पर्शनिषेधस्वरूप चपलतादि

१ हमारे ग्रंथावलोकप्रियपाठकोंको यहांपर सुबंधुका स्मरण अवश्यमेव होगा क्योंकि सुबंधुने वासवदत्ताको नायकसे मिलाकर शीघ्रही दोनों को एक लताभवनमें निद्रादेवीके आधीन करदियाहै।

दशन लसन कौन सकत बखानि है ।
कालिदास लाल अधरनपर वारौं लाल,
लसत अमोल मृदु बोलनकी बानि है ॥
सुंदर गोविंदके रिझायबेको इंदुमुखी,
रची एक रचना अनंग विधि आनि है ।
कैसी मुख माहिं खुली सुखमाकी खानि जहाँ
महामोहमयी निरमयी मुसकानि है ॥

यहां नायिकाके मुसकानेद्वारा नायकका मोहित
ो वर्णित है सोई विलासहाव है ।

३ विच्छित्ति ।

किंचित् शृंगारसे प्रियके मोहित करनेको विच्छि
कहते हैं ।

यथाः—कवित्त ।

मदनको अजिरहे राधौ कवि मेरे जान,
छविको दिवानखाना शोभाको निकेत है ।
पियमन मोहिवेको चमनहे सुखमाको,
गुलके समानवेश वेंदी द्युति देति है ॥
मान कैसो उच्चघाट कनकमय भूमि जाकी,
भानुजासी सारी नील रही करि हेत है ।
भाग्यभरो भाल औ सोहाग भरी जानकीजू,
रामचंद्र रावरेको चोऱ्यो मन लेत हैं ॥

यहां सीताजीके ललाटप्रदेशमें लगीहुई वेंदी स्वरूप किंचित् शृंगारद्वारा श्रीरामचंद्रजीका जो मोहित करना वर्णित है सोई विच्छित्तिहाव है।

४ विभ्रम।

प्रियागमनके समय हर्षरागादिके कारण अस्थानमें भूषणादि धारण करनेको विभ्रमहाव कहते हैं।

यथाः—दोहा।

पहिर कंठ बिच किंकिणी, कस्यो कमर बिच हार।
हरबराय देखन लगी, आवत नंदकुमार॥

यहां नंदकुमारके आगमनजनित हर्षके कारण नायिकाका जो कंठमें किंकिणी और कटिमें हार अयोग्य स्थानमें धारण करना वर्णित है सोई विभ्रमहाव है।

५ किलकिंचित्।

प्रियजनसंयोगजनित हर्ष, स्मित और रोदनादिके संकरको किलकिंचित् कहते हैं।

दोहा।

शिवशशिके शिरमें शिवा, तकि निज छाँह भमाइ।
डरि छकि रोई बहुरि हँसि, हँसी आपको पाय॥

यहां पार्वतीजीको जो अपनी छाया देख भय, आश्चर्य और हर्षादिका एकसाथ होना वर्णित है सोई किलकिंचितहाव है।

मोरे गोरे गातमें असित गात छुवै जनि ॥

यहांपर नायिकाने अपने गोरवर्णके अंहकारसे नायकको जो अपमानपूर्वक कहाहै कि, तू मेरे गोरे गातको अपना काला गात मत छुवावै, सोई बिब्बोकहाव है ।

८ विहृत ।

लज्जावश मनस्तुष्टि न होनेको विहृत या विकृतहाव कहते हैं ।

यथाः—सवैया ।

पग भूमि लसै वह ठाढीही द्वार विलोकत मोह हिये डलही ।
विहसीहिंसे गोल कपोल किये सो सकोचन लोचन नाइ रही ।
उघऱ्यो अधरालगि बोलकछू पर आयो न बोल यों लाजगही
सुधि आवतही कसकैछतिया जोकछू बतिया वो तिया न कही

यहां लज्जावश जो नायिकाका नायकसे यथेष्ट वार्त्तालाप न करसकना वर्णितहै सोई विहृतहाव है ।

९ कुट्टमित ।

हर्षकेसमयमें नायिकाके मिथ्यारोप प्रदर्शित करनेको कुट्टमितहाव कहते हैं ।

यथाः—दोहा ।

कर ऐंचत आवत इंची, तिय आपहि पिय ओर ।
झूठिहुं रूसि रहै छिनक, छुवत छराको छोर ॥

यहां नायिकाका जो संयोगसमयमें अर्थात् हर्षके समय [illegible] प्रदर्शित करना वर्णि है सोई कुट्टमित हाव है ।

१०ललित।

सुकुमारतापूर्व्वक अंगोंके विशेष रूपसे अलंकृत करनेको ललितहाव कहते हैं।

दोहा।

बैठी अरुण कपोलदै, लाइ दिठौना भाल।
इहिविधि किहि मनहरन यह, चली नवेली बाल॥

यहां नायिकाका जो कपोल भालादिका विशेषरूपसे अ-लंकृत करना वर्णित है सोई ललितहाव है।

११ हेला।

ढिठाईके साथ नानाप्रकारके विलासोंसे प्रियके मोहित करनेको हेलाहाव कहते हैं।

सवैया।

करसों कर जोरिकै आनन इंदुको बाहुलता परवेस करै॥
अँगिरायके अंग दिखाइ दुरै मनमोहनको मुसक्याइ हरै॥
मृगलोचनी नैन विलासनिसों प्रियके हिये भीतर मोदभरै॥
मनमोहन मोहन भावनहींसों बुलावै विलासिनि कुंजपरै॥

यहां नायिकाका जो नानाप्रकारके विलासोंद्वारा ढिठाईके साथ नायकको मोहित करना वर्णित है सोई हेलाहाव है।

२ विप्रलंभशृंगार।

परस्परानुरक्त नायक नायिकाके वियोग दशाका काव्यमें जो वर्णन कियाजाताहै उसे विप्रलंभशृंगार कहतेहैं।

विभाव — इसके विभाव पूर्वलिखित संयोगशृंगारके विभावों के अतिरिक्त प्रायः समागमबाधक आपत्तियां पूर्वानुभुक्त पदार्थोंका दर्शन तथा उत्सवादि समारंभ औरभी हैं इन सब कारणोंके योगसे नायक नायिकाका विरहदुःख प्रदीप्त होवे अत्यंत विह्वल होते हैं उनका अंगराग शुष्क

अनुभाव — होजाताहै! उन्हें अन्न जाल भाता नहीं शृंगारोद्दीपक चंदन चंद्रिकादि शीतलपदार्थ उन्हें दुःखद भासित होते हैं.वे रुदन करते हैं, वे आलंबनकी प्राप्तिके लिये यत्नवान् होतेहैं,वियोगव्यथाके कारण वे नितांत व्याकुल होते हैं उन्हें ग्लानि होती है,आलंबनकी प्राप्तिके विषयमें तर्कना करते हैं,

संचारी भाव — कभी २ उनका विवेक नष्ट हो उन्हें मोह उत्पन्न होता है, जीवित तुच्छ बोध होता है, इसप्रकारसे चिंता, जडता अमर्ष असूया स्वप्न एवं विषादादि अपर मनोविकार भी उनके मनमें उत्पन्न होते हैं।

यथाः—श्लोकः।

आलापभूरि परिरंभणभूरि गाढ़े ।
रात्रिप्रसंगसुख ते दिन यत्र काढ़े ॥
कैसे कहो तँहँ बसैं हमही अकेले ।
प्यारीवियोग दुख ना अब जाहिं झेले ॥
यत्र त्वदीयधुनि नूपुर केर छाई ।

यथाः—चौपाई ।

देखन बाग कुँअर द्वय आये । वय किशोर सब भाँति सोहाये
श्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा न नैन २ बिनु बानी
सुनिहरषीं सब सखी सयानी । सिय हिय अतिउत्कंठा जानी
एक कहहिं नृप सुतते आली । सुने जे मुनिसँग आये काली
निज निज रूप मोहनी डारी । कीन्हें स्ववश नगर नर नारी
वर्णत छवि जहँ तहँ सवलोगू । अवशि देखिये देखन योगू
तासु वचन अति सियहि सुहाने । दरशलागि लोचन अकुलाने
चली अग्र करि प्रियसखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई

दोहा ।

सुमिरि सीय नारद वचन । उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित विलोकति सकल दिशि । जिमि शिशु मृगी सभीत ॥

आगेः—चौपाई ।

नख शिख देखि रामकी शोभा ।
सुमिरि पिता प्रण मन अति क्षोभा ॥

गुणवर्णन ।

यहां श्रीमद्रामचंद्रजीके अलौकिक सौंदर्यकी वार्ता सखीमुखसे सुन उनसे मिलनेके पूर्वही सीताजीके चित्तमें जो रतिभाव उत्पन्न हुआ है सो स्थायीभाव है और रामचंद्रजी आलंबन विभाव हैं, उनका साक्षात्कार उद्दीपन विभाव है, नारदजीके वचनोंका स्मरण व्यभिचारीभाव है,

यभीत बालमृगीकीनाईं चारों ओर दृक्पात करना अनुभाव समागम बाधक धनुष्यभंजनस्वरूप पिताकी घोर प्रतिज्ञाका रण हो, चित्तमें व्याकुलताका प्रादुर्भूत होना पूर्वानुराग प्रलंभश्रृंगार है ।

२ विप्रयोग (प्रवास.)

नायक नायिकाका एकबेर समागम हो अनंतर जो उनका वेछोह होता है उसे विप्रयोग विप्रलंभ श्रृंगार कहते हैं । ाप और प्रवास इसीके अंतर्गत माने जाते हैं । विप्रयोगके ाविष्य और भूत ऐसे दो भेद हैं।

१ भविष्यत् विप्रयोग।

दोहा—समाचार तिहिं समय सुनि, सीय उठी अकुलाय ।
जाइ सासु पग कमल युग, वंदि बैठि शिरनाय ॥

चौपाई ।

सुनि प्रिय वचन मनोहर पियके।लोचन नलिन भरे जलसियके॥
शीतल शिख दाहक भइ कैसे। चकइहि शरद चंद निशि जैसे॥
उतर न आव विकल वैदेही । तजन चहत शुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि विलोचन वारी । धरी धीरज उर अवनि कुमारी॥
लागि सासु पद कहकर जोरी।क्षमब मातु बडि अविनय मोरी॥
दीन्ह प्राणपति मुहिं सिख सोई।जिहि बिध मोर परमहितहोई॥
मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं।पिय वियोग सम दुख जगनाहीं॥
याहिविधि सिय सासुहिं समुझाई।कहति पतिहिं बर विनय सुहाई

दोहा ।

प्राणनाथ करुणायतन, सुंदर सुखद सुजान ।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद विधु, सुर पुर नर्क समान ॥

यह श्रीरामचंद्रजीकी भावी वनयात्राके संवाद सुन सीताजीको विरहव्यथा होनेका वर्णन है । यहां श्रीरामचंद्रजी आलंबन विभाव हैं और उनका मातासे बिदा होनेके आना तथा सीताजीको उपदेश करना आदि उद्दीपन विभाव हैं, सीताजीका व्याकुल होना, उनके नेत्रोंका साश्रु होना तथा उत्तर न देते बनना और श्रीरामचंद्रजीका वियोग न होनेपावे. इसप्रकारकी उनसे प्रार्थना करना आदि अनुभाव हैं, पतिविना स्त्रीकेलिये स्वर्गभी नर्कके तुल्य है आदि विचार व्यभिचारी भाव हैं । कुछ कालसे आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते २ सहसा अचिंत्यभावी वियोगकी वार्ता सुन सीताजीको यहाँ जो व्याकुलता हुई है सोई भविष्य-विप्रयोग (प्रवास) शृंगार है ।

और भी—सवैया ।

पी चलिबेकि चली चरचा सुनि चंद्रमुखी चितई दृग कोरन ।
पीरी परी तुरतै मुखपै बिलखी अतिव्याकुल मैन सकोरन ॥
को बरजै अलिकासों कहै मन झूलत नेह ज्यों लाज झकोरन ।
मोतीसे पोइ रहे अँसुवा नगिरे नफिरे वरु नैनके कोरन ॥

पाठक इसके विभावादिकोंको तर्कसे जानलेवें ।

२ भूतविप्रयोग । चौपाई ।

हा गुण खानि जानकी सीता । रूप शील व्रत नेम पुनीता॥
लक्ष्मण समुझाये बहुभाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रयनी । तुम देखी सीता मृगनयनी ॥
खंजन शुक कपोत मृग मीना।मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुंदकली दाडिम द्युति दामिनी।कमल शरद शशि अहिभामिनी
वरुण पाश मनोज धनु हंसा। करि केहरि निज सुनत प्रशंसा॥
सुनु जानकी तोहिं विनु आजू । हर्षे सकल पाइ निजराजू ॥
किमि सहिजात अनखतोहिंपाहीं। प्रियावेगिप्रकटतकसनाहीं॥

और आगे फिर

लक्ष्मण देखहु वनकी शोभा।देखत केहिकर मन नाहिं क्षोभा॥
नारि सहित सब खग मृग वृंदा। मानहुँ मोरि करत हैं निंदा॥
हमहिं देखि मृग निकर पराहीं।मृगी कहहिं तुम कहँभय नाहीं॥
तुम आनंद करहु मृग जाये । कंचन मृग ये खोजन आये ॥
संग लाइ करिनी करि लेहीं । मानहु मोहिं सिखावन देहीं ॥
देखहु तात वसंत सुहावा । प्रियाहीन मोहिं भय उपजावा ॥

दोहा ।

विरह विकल बलहीन मोहिं, जानेसि निपट अकेल ॥
सहित विपिन मधुकर खगन, मदन कीन वगमेल ॥

यहां सीताजीविषयक रतिस्थायीभाव है और सीताजी आलंबनविभाव हैं, खंजन, शुक, कपोत और भ्रमरादिकोंका दर्शन उद्दीपनविभाव है, सीताजीके सौंदर्य्य

तथा शालीनतादिगुणोंका स्मरण तथा वृक्ष लतादिकोंसे उनका पता पूँछना संचारी (उन्माद) भाव है। विरह व्यथासे विकल होना अनुभाव है। यहांपर सीताजीका वियोग होनेके अनंतर रामचंद्रजीको विरहदुःख हुआ है एतावता यहां भूत विप्रयोग (प्रवास) नामक विप्रलंभ शृंगार हुआ है।

२ मान।

प्रियापराधजनित प्रेमप्रयुक्त कोपको मान कहते हैं। इसके दो भेद हैं अर्थात् प्रणयमान और ईर्ष्यामान।

प्रणयमान १

प्रणयभंगके कारण जो रोपःउत्पन्न होताहै उसे प्रणयमान कहते हैं। नायक और नायिका दोनोंका प्रणयमान वर्णनीयहै।

यथा नायकका प्रणयमानः—दोहा।

कपटनींद सोये सुभग, देहु स्वामि मम थानु।
चुंबनते रोमांच तनु, नहिं विलंब अब जानु॥

नायिकाके आनेमें विलंब देख निद्राके व्याजसे सोयेहुए नायकको नायिका कहती हैं। हे सुभग! हे स्वामि! हे चुंबन-रोमांचतनु! मुझे मेरा स्थान दीजिये यहां नायिकाके आगमन विलंबके कारण नायकको जो कोप हुआ है सोई प्रणयमान

नायक नायिकाके प्रेमप्रमुख परस्परके वशवर्ती होनेको प्रणय हैं।

पतिके विनोदजनक एक कवित्त सुनानेपर दूर होगई और नायिका प्रकृति सुलभ लज्जावश नीचेको निहारने लगी । यहां नायिकाके चित्तमें जो मान उत्पन्न हुआ था सो लघु उपायसेही निवृत्त होगया अतः यहां लघुमानमानना उचित है ।

मध्यममान २

प्रियके मुखसे परस्त्रीकी प्रशंसा सुनकर जो मान उत्पन्न होता है और जो स्वयं वा दूतीद्वारा विनय वा शपथादिसे दूर होता है उसे मध्यममान कहते हैं ।

यथाः— कवित्त ।

बैसहीकी थोरीपै न थोरी है किशोरी यह,
याकी चित्त चाह राह औरकी मढ़ैयो जनि ।
कहै पदमाकर सुजानरूप खान आगे,
आन वान आनकी सुआनिकै चलैयो जनि ॥
जैसे तैसे करि रात सौंहनि मनाय लायी,
तुम इक मेरी बात येती बिसरैयो जनि ।
आजुकी घरीतै लैमु भूलिहूँ भलैं हो श्याम,
ललिताको लैके नाम बाँसुरी बजैयो जनि ॥

नायकके मुँहसे अपर स्त्रीकी प्रशंसा सुन रूठी हुई नायिकाको शपथादिद्वारा मनाय करदुती नायकसे निवेदन [illegible]ती है:—हे सुजान ! हैं तो यह (नायिका) अल्पवयस्क बड़ी चतुर है, अब कृपाकर इसके आगे किसीके सौंद-

पकड़ कहा कि, जान पड़ता है आज यह महावर मेरे ललाट प्रदेशमें लगेगा अर्थात् मुझे नायिकाको प्रणामकर मनाना पड़ेगा। नायकके यह वचन सुनतेही नायिका बहुत लज्जित हुई। उसका मान दूर होगया और वह आकर नायककी सेवामें उपस्थित होगयी, यहां नायिकाका पतिमें परस्त्रीगमन चिह्नदेख मान ठानना और पतिद्वारा तच्चरण पतनसे उसकी निवृत्ति वर्णित है अतः यह गुरुमान है।

यहांलों विप्रलंभके तीनों भेद उदाहृत कियेगये। कहना नहीं होगा कि, विप्रलंभश्रृंगारका वर्णन करनेकेलिये कविको चाहिये उतनी सामग्री प्र त होसकती है। पर वही बात संभोगश्रृंगारके विषयमें चरितार्थ नहीं होसकती। कहा भी है कि, संभोगश्रृंगार विप्रलंभश्रृंगारके बिना शोभाको प्राप्त नहीं होसकता।[१]

ध्यान रहे कि, विप्रलंभका रोदन करुणरस नहीं होसकता, क्योंकि करुणरसका स्थायीभाव शोक है, और विप्रलंभश्रृंगारका स्थायीभाव रति है। यावत्कालपर्य्यंत इष्टजन प्राप्तिकी आशा बनी रहती है, तावत्कालपर्य्यंतका शोक विप्रलंभश्रृंगार मानाजाता है और जहां इष्टजन प्राप्तिकी यत्किंचित्भी आशा नहीं रहती वहांका शोक करुणरस माना जाता है। जैसे रामायणमें सीताजीके रावणद्वारा अपहृत

१ न विनाविप्रलंभेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्द्धते॥

यहां वियोगावस्थामें नायिकाको नायकके मिलनेकी इच्छाका उत्पन्न होना जो वर्णित है सोई अभिलाप है।

२ चिंता ।

वियोगावस्थामें चित्तशांतिके उपाय वा संयोगके विचारसे चिंता कहते हैं ।

यथा—चौपाई ।

कबहुँ नयन मम शीतल ताता । होइहि निरखिश्याम मृदु गाता॥
वचन न आव नयन भरि वारी।अहो नाथ मोहिं निपट बिसारी।

यह सीताजीका वचन हनुमानजीप्रति है। यहां सीताजीका रामचंद्रजीके संयोगका जो विचार करना वर्णित है सोई चिंता है ।

३ स्मरण ।

वियोगावस्थामें प्रियसंयोगजात पूर्वानुभुक्तवस्तुके ज्ञान होनेको स्मरण कहते हैं ।

यथा—चौपाई ।

तात शक्र सुत कथा सुनायहु ।बाण प्रताप प्रभुहिं समझायहु ॥

पूर्वमें इंद्रपुत्र जयंतने काक शरीर धारणकर सीताजीको जो पीडा दी थी और कोमलचित्त रामचंद्रजीने तदर्थ जयंतको दंड दे सीताजीकी रक्षा की थी उसका उन्हें वियोगावस्थामें यहांजो स्मरण होना वर्णित है सोई स्मरण है।

४ गुणकथन ।

[illegible] ामें प्रियके [illegible] करनेको गुणकथन कहते हैं।

यहाँ नायकने नायिकाके वियोगसे अत्यंत विह्वल हो तारागणों को चिनगी और चंद्रको अग्नि जो कहा है सोई उद्वेग है।

६ प्रलाप ।

विरहावस्थामें प्रियको निकटमान निरर्थक वचन रचना वा क्रिया करनेको प्रलाप कहते हैं ।

यथा—कवित्त ।

आमको कहत अमिली है अमिलीकोआम,
आकही अनारनको आकिबो करति है।
कहै पदमाकर तमालनको ताल कहै,
तालनि तमाल कहि ताकिबो करति है ।
कान्है कान्ह काहू कहि कदली कदंबनिको,
भेटिपरी रंभनमें छाकिबो करति है ।
साँवरे सो रावरे यों विरह बिकानी बाल,
बन बन बावरीलों ताकिबो करति है ॥

कोई दूती श्रीकृष्णसे उनके विरहमें व्याकुल नायिकाकी अवस्था निवेदन करती है ।

हे कान्ह । तुम्हारेविरहमें व्याकुल हो वह नायिका आमको अमिली और अमिलीको आम, अनारको आक, तमालको ताल आदि कहती है । कदली और कदंबको कान्ह जान उनका परिरंभण करती है। यहां नायिकाका आमको अमिली कहना आदि निरर्थक वचन रचना और कृष्णजान कदंबको परिरंभण करनादि निरर्थक क्रियाही प्रलाप है ।

७ उन्माद।

वियोगावस्थामें अत्यंत संयोगोत्कंठितहो मोहपूर्वक वृथा कहने व्यापार करनेको उन्माद कहते हैं।

यथा—सवैया।

ऊपरही कछु राग लपेटे अहो उर अंतरके अतिकारे।
त्यों द्विज देवजी सूधे सुभाय सदा बिकसौ कछु लातन मारे॥
आपुसों औ अति नीचनसों कहौ भेद कहाहै बिचार बिचारे।
जीवन मुरि बतायके बेगि जु शोक अशोक हरौ न हमारे॥

रासक्रीडाके समय श्रीकृष्णजीके अंतर्हित होजानेपर उनके वियोगसे कातर हो कोई सखी अशोक वृक्षेम कहती है "हेअशोक! यह तुम्हारे पत्रोंपर जो लालिमा दीख पडती है सो ऊपरहीकी है अंतरंग तुम्हारा काला है। स्वभावतः लात न मारे जानेपर तुम प्रसन्न होते हो तौ बताव कि, तुममें और नीचजनमें क्या भेदहै? हां इतना भेद अवश्य है कि, तुम अशोक कहाते हो पर जबलों तुम हमारा शोक दूर नहीं करते अर्थात् हमें श्रीकृष्णसे नहीं मिला देते तबलों तुम्हारा अशोक नामही वृथा है।" यहां श्रीकृष्णके संयोगकी परमउत्कंठाके कारण नायिकाने मोहवश वृक्षसे जोकुछ कहाहै सोई उन्मादहै।

८ व्याधि।

वियोगदुःखजनित शारीरिक कृशता तथा अस्वास्थ्यको व्याधि कहते हैं।

यथा—कवित्त ।

दूबरी तो ऐसी देखी सुनो रघुराय जाके,
आगे दूज शशिकी कला तो अतिपीन है ।
पीरी इहिभाँति जाते हरदी कुसुंभरंग,
आँसुनके आगे मेघ सावनको हीन है ।
विरहाके श्वासनके आगे आग ऐसे जैसे,
महाहिम बोल मुख श्वासन अधीन है ।
जनक सुताको एक पतिव्रत शील सुन,
और देख देखतो मैं वारे पुरतीन है ॥

लंकासे लौटकर हनुमानजीने सीताजीकी अवस्था रामचंद्रजीके प्रति निवेदन की है । यहां विरहके कारण सीताजीकी कृशता तथा अंगराग विपर्य्ययादि जो वर्णित हैं सोई व्याधि है ।

९ जडता ।

वियोगदुःखसे शरीरके चित्रवत् अचल होजानेको जडता कहते हैं ।

यथा—सवैया ।

छूटिगयो हँसिबो सब खेलिबो बोलिबेको भयो आज निवेरो।
ज्ञान कछू न रह्यो उनके अब ऐसी वियोगकी आपदा हेरो॥
अंग अलीन हलै न चलै अनमेखे पर्‌यो यह साहस मेरो ।
[illegible] दशा सुनि मोहन लालकी क्यों मन होत दयाल न तेरो॥

यहां नायिकाकें वियोगदुःखसे नायकको हँसने बोलने आदिका ज्ञान न रहना तथा उसके अंगका अचल होनादि जो वर्णित है सोई जडता है।

१० मरण।

प्राणविसर्जनको मरणदशा कहते हैं।

यथा–सवैया।

बुद्धि विवेक सबै तजिके मनकी कछु रीति अपूरव ह्वै है।
सो तनु तायो कि तोऊ रहै घरजीवन जीवनही ढिग जैहैं॥
रावरे आगममें द्विजदेव विलंब कछू जो कहूँ सुनि पैहै।
ओढ़न लागी जो आसनसे फिरि ओढ़नेन वह सांसन ऐ है।

किसी प्रोषितभर्तृका नायिकाकी दूती नायकप्रति जाकर कहती है, हे नायिकाके जीवनधन बुद्धि! और विवेकको छोड उसके मनकी रीति कुछ औरही होजायगी अर्थात् मन सूना होजायगा तुम्हारे वियोगसे संतप्त हुआ नायिका तन घरपर भलेही पडारहे पर उसका जी तुम्हारेही पास आजावेगा तुम्हारे आगमनकी आशासे जो वह थोडी २ श्वास लेने लगी है सो यदि वह तुम्हारे आगमनमें कुछभी विलंब सुन पावेगी तो उसकी श्वास फिर होठोंके बाहरही रहजायगी। यहां नायकके विरहमें नायिकाका जो प्राणत्याग वर्णित है सोई मरणदशा है।

२ हास्यरस।

हासनामक स्थायीभावकी पूर्णावस्थाको हास्यरस कहतेहैं।

यह प्रायः चित्र विचित्र वेपरचना, आश्चर्य्योत्पादक

विभाव। } चेष्टा, विनोदपूरित आलाप, अपरलोगोंकी हँसी, जनविलक्षणस्वरूप, विपरीतअलंकारधारण तथा विपरीतक्रियादिके दर्शनद्वारा उत्पन्न होताहै । एतावता यह सब उसके विभावहैं । इसकी उत्पत्तिके अनंतर मुख प्रसन्न

अनुभाव। } होताहै दंतावलि विकसित होती है । जिसे हँसी आती है उसके निकट यदि कोई बैठा हो तो वह उसके हाथपर हाथ मारता है, शिरःप्रकंप करता है। नेत्रोंसे अश्रुपात होताहै इत्यादि जो क्रिया अनुष्ठित होती हैं वे सब

व्यभिचारी भाव } अनुभाव हैं । और उससमय हर्ष,प्रबोध, असूया, श्रम, शंका,चपलता और ग्लानि प्रभृति जो भाव उत्पन्न होतेहैं वे सब व्यभिचारीभाव हैं ।

यथा—चौपाई ।

शिवहिं शंभुगण करहिं शृँगारा । जटामुकुट अहि मौर सँवारा ।
कुंडल कंकण पहिरे व्याला । तन विभूति कटि केहरि छाला ॥
शशि ललाट शिर सुंदर गंगा । नयन तीन उपवीत भुजंगा ॥
गरल कंठ उर नरशिर माला । अशिव वेश शिवधाम कृपाला ॥
कर त्रिशूल अरु डमरुविराजा । चलेवसहचढिवाजहिंवाजा॥
देखिशिवहिंसुर तियमुसकाहीं ।बरलायक दुलहिनि जगनाहीं॥
सुरसमाज सबभाँति अनूपा । नहींबरात दूलह अनुरूपा ॥
दो॰विष्णुकहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज ।

बिलग २ है चलहु सब, निज २ सहित समाज ॥
चौपाई—वरअनुहारबरात न भाई । हँसी करैहहु परपुर जाई ॥
विष्णुवचनसुनि सुरमुसकाने । निज सेन सहित बिलगाने ॥
मनहींमन महेश मुसुकाहीं । हरिके व्यंगवचन नहिं जाहीं ॥
अतिप्रिय वचन सुनत हरिकेरे । भृंगीप्रेरि सकलगण टेरे ॥
शिवअनुशासनसुनि सबआये । प्रभुपद जलजशीश तिननाये ॥
नाना वाहन नाना वेखा । बिहँसे शिवसमाज जिन देखा ॥
कोउमुखहीनविपुलमुखकाहू । बिनुपदकर कोउ बहुपद बाहू ॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना।हृष्ट पुष्ट कोउ अतितनु क्षीना॥

पुनः आगे ।

नगर निकट बरात सुनि आई । पुर खर भर शोभा अधिकाई ॥
करि बनाव सजि वाहन नाना । चले लेन सादर अगवाना ॥
हियहर्षे सुरसेन निहारी । हरिहिं देखि अति भये सुखारी ॥

यहां आलंबनविभाव शंकर हैं और उद्दीपन विभाव उनकी विचित्र वेषरचना अर्थात् सर्पादिक विभूषण तथा उनके विचित्र वेषधारीगण हैं । इसविलक्षण बरातको देख सुर तथा उनकी महिलाओंका हँसना अनुभाव है, और बरातको देख हिमाचल नगरनिवासी लोगोंका हर्षित होना व्यभिचारीभाव है ।

इन सबकी सहायतासे हासनंज्ञक स्थायीभाव परिपुष्ट हो हास्यरस संज्ञाको प्राप्त हुआ है ।

पुनरपि–कवित्त ।

हँसि हँसि भजें देखि दूलह दिगंबरको ।
पाहुनी जे आवें हिमाचलके उछाहमें ॥
कहै पदमाकर सुकाहूसों कहैको कहा ।
जोई जहाँ देखे सो हँसेई तहाँ राहमें ॥
मगन भये ईहँसे नगन महेश ठाढे ।
और हँसेऊ हँसे हँसीके उमाहमें ॥
शीशपर गंगा हँसे भुजनि भुजंगा हँसै ।
हाँसहीको दंगा भयो नंगाके विवाहमें ॥

उक्त नियमानुसार पाठकगण अपनी बुद्धिसे इसकवित्तके भावादिकोंकोभी जान लेवें ।

हास्यरस निम्नलिखित छः भेदोंमें विभक्त कियागया है। यथा– १ स्मित, २ हसित, ३ विहसित, ४ उपहसित, अपहसित और ६ अतिहसित ।

१–विना दंतावलिके दर्शन और स्वरके कर्णगत हुए कसित कपोल संयुक्त मंदहासको स्मित कहते हैं।

२–जिसहासमें मुख, नेत्र और कपोल किंचित् विकतहो कुछ दांतभी दीख पड़ते हैं उसको हसित कहते हैं ।

३–मधुर शब्द निकलते हुए हसितकी अपेक्षा कुछ धिक स्पष्ट हासको विहसित कहते हैं ।

४–स्कंध तथा शिरःकंपपूर्व्वक नाकको फुला कुटिलदृष्टिसे ते हुए स्पष्ट शब्द सम्मिलित हासको उपहसित कहते हैं।

५–अश्रु निकलते और ग्रीवा हिलते हुए अत्यंत स्पष्ट हासको अपहसित कहते हैं ।

६–जिसहास्यमें शरीर काँपता है और आँसू अधिक बहते हैं तथा निकटस्थ मनुष्यके हाथपर हाथ मार मनुष्य ऊंचे स्वरसे ठठाकर हँसता है उसे अतिहसित कहते हैं ।

यह छः भेद मनुष्यकी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ प्रकृतिके अनुसार मानेगये हैं । अर्थात् जिस प्रकृतिका मनुष्य होगा उसे वैसा हास्य उत्पन्न होगा । वह इसप्रकारसे कि, जिन मनुष्योंका स्वभाव शांत अथवा गंभीर रहता है वे उत्तम कहाते हैं और उन्हें स्मित एवं हसित उत्पन्न होते हैं । मध्यम प्रकृतिवाले पुरुषोंको विहसित और उपहसित उत्पन्न होते हैं, कनिष्ठ स्वभाववाले मनुष्यों तथा बालकोंको अपहसित और अतिहसित उत्पन्न होतेहैं । कविजनोंको काव्यमें नायक तथा अपरपात्रोंका हास्यवर्णित करते समय उनके स्वभावपर विशेष ध्यान रखना चाहिये । स्थानसंकोचवशात् उक्त भेदोंके यहांपर उदाहरण नहीं दिये जासकते । विद्याविलासी पाठकगण उन्हें अन्यत्र देखलेंगे ।

रसतरंगिणी कारने हास्यरसके स्वनिष्ठ और परनिष्ठ ऐसे दो भेद और भी माने हैं, और रसगंगाधरमें उनकी व्याख्या यों की गयी है:—

१–विभावादिकोंके दृष्टिपथमें आतेही वा मनके अन्दरमें

किसी बातका स्मरण हो अपने आपकोही जो हँसी आती
उसे स्वनिष्ठ कहते हैं ।

२—हँसतेहुए दूसरे मनुष्यको देख जो हँसी आती है उ
परनिष्ठ कहते हैं ।

३ करुणरस ।

शोककी परीपूर्णावस्थाको करुणरस कहते है अभीष्टजन
विभाव } पदार्थके नाश, बंधन, क्लेश, राजाके रोष, महापुरुष
अभिशाप, देवताके क्षोभ संकट दरीद्रतादि जा
शोक इसके विभाव हैं । इसशोकके अनंतर मनुष्य जो रोद
अनुभाव } करता है । दीर्घनिःश्वास परित्याग करता है सि
तथा छाती पीटता है, अभीष्टजनका गुण वर्ण
करता है, पृथ्वीपर पतित होताहै, उसका कंठ शुष्क हो
जाता है सो सब अनुभाव है । तदनंतर विषाद, जड़ता, चिंता
व्यभिचारी-भाव । } उन्माद, व्याधि, ग्लानि, निर्वेद, और अपस्मा-
रादि जो भाव उत्पन्न होते हैं वे सब व्यभि-
चारीभाव हैं । इन सबके योगसे स्थायीभाव शोकपूर्णावस्थ
हो करुणरससंज्ञाको प्राप्त होता है ।

यथाः—चौपाई ।

पतिशिर देखत मंदोदरी । मूर्च्छित विकल धरणि खसि परी ॥
युवतिवृंद रोवति उठि धाई । तिहिं उठाय रावणपहँ लाई ॥
पतिगति देखत करहिं पुकारा । छूटे केश न वेष सँभारा ॥
तव बलनाथ डोल नित धरणी।तेजहीन पावक शशि तरणी॥

अनुभाव । चावने लगता है, खम ठोकने लगता है शत्रुको मारनेकी चेष्टा करता है सो सब अनुभाव है । ऐसे प्रसंगपर अमर्ष, चपलता, उग्रता, स्मृति और खेदादि जो

व्यभिचारी-भाव । विकार उत्पन्न होते हैं वे सब व्यभिचारीभाव हैं ।

यथाः—चौपाई ।

तिहिंअवसर सुनि शिवधनु भंगा । आये भृगुकुलकमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जिमि लवा लुकाने॥
गौर शरीर भूति भल भ्राजा । भाल विशाल-त्रिपुंड विराजा"
शीशजटा शशिवदनसुहावा । रिसवशकछुकअरुण ह्वै आवा
भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते।सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते
वृषभ कंध उर बाहु विशाला । चारु जनेऊ माल मृगछाला
कटि मुनि वसन तूण दुइ बाँधे।धनु शरकर कुठार कल कांधे।
सुनत वचन फिरि अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे ॥
अतिरिसबोलेवचनकठोरा । कहुजडजनकधनुषकयहिंतोरा ॥
वेगि दिखाउ मूढ़ नत आजू । उलटौंमहि जहँलगि तवराजू ॥
अतिडर उतर देत नृपनाहीं । कुटिलभूप हरषे मनमाहीं ॥
सुनहुराम ज्यहि शिवधनु तोरा । सहसबाहुसम सो रिपु मोरा ॥
सो बिलगाय विहाय समाजा । नतुमारे जैहैं सबराजा ॥
सुनिमुनि वचन लषन मुसुकाने । बोले परशुधरहिं अपमाने ॥
बहुधनुहीं तोरीं लरिकाईं । कबहुँ न असरिस कीन्हगोसाईं ॥
यहि धनुपर ... केहिहेतू । सुनिरिसोपकह भृगुकुल केतू॥

दो०—रेनृपबालक कालवश, बोलत तोहिं नसँभार ।
धनुहीसम त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार ॥
लषण कहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे । देखा राम नयेके भोरे ॥
छुवतटूट रघुपतिहि न दोषू । मुनि विनुकाज करहु कत रोषू॥
बोले चितय परशुकी ओरा । रे शठ सुना स्वभाव न मोर ॥
बाल बिलोकि वधेउँ नहिं तोहीं । केवल मुनि जड जानेसि मोहीं
बालब्रह्मचारी अति कोही । विश्व विदित क्षत्रीकुल द्रोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं । विपुल वार महिदेवन दिन्हीं
सहसबाहु भुज छेदनहारा । परशु बिलोकु महीप कुमारा ॥
दो०—मातु पितहिं जनि शोच वश, करसि महीप किशोर ।
गर्भिनके अर्भक दलन, परशु मोर अतिघोर ॥
कहेउ लषण मुनि शील तुम्हारा । को नहिं जान विदित संसारा।
मात पितहिं उऋण भये नीके।गुरु ऋण रहा शोच बड़ जीके॥
सो जनु हमरे माथे काढ़ा । दिन चालि गये व्याज बहुबाढ़ा॥
अब आनिय व्यवहरिया बोली । तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥
सुनि कटु वचन कुठार सँवारा । हाय हाय सब सभा पुकारा॥

उक्तवर्णनमें शिवधनुष्य तोडनेवाला आलंबन विभाव है और धनुष्यभंगके कारण जो क्रोध उत्पन्न हुआ है सो स्थायीभाव है आगे यह स्थायीभाव धनुष्यकी निंदाद्विारा उद्दीपितहो अमर्ष उग्रतादि व्यभिचारी भावोंद्वारा विस्तृत हो शत्रुको मारनेके हेतु कुठार उठाना नेत्रोंका आरक्त होना

तथा क्षत्रियोंकी निर्भर्त्सना करनादि अनुभावोंद्वारा दृग्गोचर हुआ है। उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुआ क्रोध-यहां पूर्णावस्था को प्राप्त हो रौद्ररससंज्ञाको प्राप्त हुआ हैं।

८ वीररस।

प्रहर्ष वा उत्साहकी पूर्णावस्थाको वीररस कहते हैं। रस-तरंगिणीकारके मतानुसार इसके तीन भेद हैं अर्थात् १ युद्ध-वीर २ दानवीर और ३ दयावीर। प्रत्येक वीररसके विभावा-दिक भिन्न २ होते हैं।

१ युद्धवीर।

युद्धोत्साहकी पूर्णावस्थाको युद्धवीररस कहते हैं। युद्ध-वीरका उत्साह उत्पन्न होनेके लिये शारीरिक बल, शत्रुद-

विभाव। } लकी न्यूनता, स्वबलकी पूर्णता, मित्रोंकी सहायता, विजयकी संभावना, देशकालकी अनुकूलता और इष्टदेवताकी प्रसन्नतादि कारणस्वरूप होती हैं।

अनुभाव। } उत्साहकी उत्पत्तिके अनंतर जो बाहुस्फुरण होता है, मुख प्रसन्न होता है, सैन्यकी तयारी की जाती है, अपने वीरोंको उत्साह प्रवर्द्धक वक्तृता दी जाती शस्त्रास्त्रोंकी योजना की जाती है, शत्रुदलपर आक्रमण किया जाता है सो सब अनुभव हैं। और उस-समय उग्रता, आवेग, अमर्ष, व्यभिचारीभाव गर्व, धृति, मति आदि जो भाव उत्पन्न होते हैं वे सब व्यभिचारी भाव हैं।

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि, आज काज बड़ मोहु
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहु ॥
रामप्रताप नाथ बल तोरे।करहिं कटक विनु भट विनु घोरे॥
जियत पांव नहिं पाछे धरहीं । रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥
देखि निषाद नाथभल टोलू । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥

यहां भरतजी आलंबनविभाव हैं । और निषादका उत्साह स्थायीभाव है । आगे रामचंद्रजीकी प्रसन्नता स्वबलकी पूर्णता, विजयकी दृढ आशा, देश तथा योग्यताकीअनकूलता (अर्थात् गंगाजीका तीर रणक्षेत्र और इतने बड़े राजासे लड़नादि विचार) दिसे निषादका उत्साह बढा है अतः यह सब यहां उद्दीपनविभाव हैं । आगे निषादने प्रसन्न हो जो अपने वीरोंको वक्तृता दी है उनके उत्साहको अभिवृद्ध किया है उनलोगोंने अपने शस्त्रास्त्रधारण किये हैं, रणवाद्य बजानेकी आज्ञा दीगयी हैं, सो सब अनुभाव हैं और जयलाभकी दृढाशा (धृति) सन्मुख भाईभी आवे तो विनामारे न छोडें आदि जो उग्रताभाव वीरोंके मनमें उद्भूत हुए हैं सो सब संचारीभाव हैं ।

इसप्रकारसे निषादका उत्साहरूप स्थायीभाव यहां पूर्णावस्थाको प्राप्त हो युद्ध वीररससंज्ञाको प्राप्त हुआ है ।

२ दानवीर ।

दातृत्वोत्साहकी परिपूर्णताको दानवीर कहते हैं। दा

राजाके आदरपूर्वक महिसमर्पण स्वरूप अनुभावद्वारा व्यक्त हुआ है, एतावता यहां दान वीररस हुआ है।

३ दयावीर।

परदुःखहरणोत्साहकी पूर्णावस्थाको दयावीररस कहते हैं। दुःखार्त्तजन इसका आलंबनविभाव होताहै और उसके दुःखका दर्शन तथा उसकी आर्तध्वनिका श्रवण उद्दीपन विभाव है। वह आगे धृति स्मृति तथा मत्यादि संचारी भावद्वारा विस्तृत हो तत्समयोचित भाँति भाँति की क्रिया-रूप व्यक्त होता है।

यथाः—कवित्त।

सुनि कमलापति विनीत बैन भारी तासु,
आसु चलिबेकी लखौं गतियों दराजकी।
छोडि कमलासन पिछौंड गरुडासनहूँ,
कैसे मैं बखानौं दौर धौरे मृगराजकी ॥
जाय सरसीमें यों छुड़ाय गज ग्राहहीतें,
ठाढ़े आप तीर इमि शोभा महराजकी।
पीतपट लै लै कै अँगोछत सरीरकर,
कंजनैनै पोंछत भुसुंड गजराजकी ॥

यहाँ ग्राह पीड़ित गजकी रक्षाका उत्साह स्थायीभाव है और गज आलंबन विभाव है। आगे यह स्थायीभाव गजकी आर्तध्वनिद्वारा उद्दीपित तथा रक्षाके धैर्य

मत्यादि व्यभिचारी भावोंद्वारा विस्तृत हो कमलासन एवं गरुडासनका त्यागकर गजको ग्राहसे छोडाने तथा निजपीतपटसे उसे अँगोछने आदि क्रियास्वरूप अनुभावोंद्वारा प्रगट हुआ है । अतः यहांपर दयावीररस प्रादुर्भूत हुआ है

किसी किसी सहित्य ग्रंथप्र म्मति है कि, जब कि—उत्साहहीसे वीररस उत्पन्न होता है तो जिस जिस विषयमें उत्साह उत्पन्न हो उस २ नामसे वह वीररसही माना जाय । जैसे धर्म्मवीर, क्षमावीर, विद्यावीर इत्यादि ।

६ भयानक रस ।

भयकी परिपुष्टता वा इंद्रियविक्षोभको भयानकरस कहते हैं । निर्जन प्रदेश वा शून्यगृहादिकोंका दर्शन, घोर शब्दोंका श्रवण और मरघटादिमें भय उत्पन्न होताहै (विभाव ।) अनंतर शरीर कंपायन होने लगता है, मुख सूखने लगता है, और म्लान होजाता है शरीर रोमांचित होता है (अनुभाव ।) । ऐसे प्रसंगपर चित्तमें चिंता शंका, मोह, दैन्य, आवेग, अपस्मार, चपलता, और मूर्च्छादि भावोंका आविर्भाव होता है (व्यभिचारीभाव ।) ।

यथाः—तु०कृ०रा० चौपाई ।

चलत दशानन डोलत अवनी । गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ॥
रावण आवत सुना सकोहा । देवन तके मेरु गिरि खोहा ॥
दिगपालनके लोक सुहाये । सूने सकल दशानन पाये ॥

यहां रावण आलंबन विभाव है और उसकी गर्जना उद्दीपनविभाव है । भय स्थायीभाव है । उक्तकारण उद्दीपित हुआ सुरऋषियों तथा देव एवं दिग्पालोंका भय आवेगादि व्यभिचारी भावोंद्वारा अतिवृद्ध हो यथाक्रम गर्भपात पर्वतादिकोंकी दरीमें भागजानादि अनुभावोंद्वारा व्यक्त होकर भयानकरसभेदको प्राप्त हुआ है ।

पुनरपि ।

कवित्त—लाइ लाइ आगि भागि चाल जात जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरुतें विशालसो ।
कौतुकी कपीश कूदि कनक कँगूरा चढ्यो,
रावण भवन चढ़ि ठाढ़ो तिहिं कालसो ॥
तुलसी विराज्यो व्योम वालधी पसारी भारी,
देखे हहरात भट कालसों करालसो ।
तेजको निधान मानो कोटिक कृशानु भानु
नख विकराल मुख तैसो रिस लालसो ॥ १ ॥
जहाँ तहाँ बुबुक विलोकी बुबुकारी देत,
जरत निकेत धावो धावो लागी आगिरे ।
कहाँ तात मात भ्रात भगिनी भामिनी भाभी,
ढोटा छोटे छोहरा अभागे मोरे भागिरे ॥
हाथी छोरो घोरा छोरो महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो सोवै सो जगावो जागि जागिरे ।

तुलसी विलोकि अकुलानी यातुधानी कहैं,
बार बार कह्यो पिय कपिसों न लागिरे॥ २ ॥
हाट बाट कोट ओट अट्टनि अगार पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत सँभारत न कोऊ काहू,
व्याकुल जहाँसो तहाँ लोग चले भागि है॥
बालधी फिरावै बार बार झहरावै झरे,
बूँदियासी लंक पघिलाय पाग पागि है।
तुलसी बिलोकि अकुलानी यातुधानी कहैं,
चित्रहूके कपिसों निशाचर न लागि है॥ ३ ॥
लागी लागी आगी भागि भागिचले जहाँ तहाँ,
धीयको न माय बाप पूतन सँभारहीं।
छूटे बार बसन उघारे धूम धुंध अंध,
कहैं बारे बूढे बारि बारि बार बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नामलै चिलात बिललात अकुलात अति,
तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं॥४॥
लपट कराल ज्वाल जाल माल दुहूँ दिशि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहिरे।
पानीको ललात बिललात जरे गात जात,

परे पाइ माल जात भ्रात तू निबाहिरे ॥
प्रिया तू पराही नाथ नाथ तू पराहि बाप,
बाप तू पराहि पूत पूत तू पराहिरे।
तुलसी बिलोकि लोक व्याकुल बिहाल कहैं,
लेहि दशशीश अब बीस चख चाहिरे ॥५॥

उक्तवर्णनमें आलंबन विभाव कपि (महावीर) है और तदुत्पन्न भय स्थायीभाव है। वह स्थायीभाव आगे महावीर जीकी आगलगानादि घोर चेष्टाओंद्वारा उद्दीपित हुआ है अतः वह सब चेष्टा उद्दीपनविभाव हैं। अग्निका प्रकोप देख लोगोंके चित्तमें जो चिंता आवेग और मोहादिभाव उत्पन्न हुए हैं वे सब व्यभिचारीभाव हैं। इनके योगसे भयस्थायी परिपुष्ट हो लोगोंका परस्परको पुकारना अपनी रक्षाके हेतु यत्नकरनादि अनुभावोंद्वारा जो अभिव्यक्त हुआ है सोई भयानक रस है।

७ बीभत्सरस।

जुगुप्साकी परिपूर्णावस्था वा इंद्रियोंके संकोचकको बीभत्सरस कहते हैं। घृणित पदार्थोंका दर्शन, स्मरण और उनकी बास इसके विभाव हैं। नाक मुँह सिकोड़ना शरीका रोमांचित होना और वमन होनादि इसक अनुभाव हैं।

विभाव।

अनुभाव।

व्याभिचारी भाव } आवेग, मोह तथा अपस्मारादिभावोंका उत्पन्न होना व्यभिचारीभाव हैं। यथाः—

विविध रंगकी उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति ।
कहुँ चरबीसों चटचटाति कहुँ दह दह दहकति ॥
कहुँ फूँकन हित धन्यो मृतक तुरतहि तहँ आयो ।
पन्यो अंग अधजन्यो कहुँ कोऊ कर खायो ॥
कहुँ श्वान इक अस्थिखंडले चाटि चिचोरत ।
कहुँ कारी महिका कठोरसों ठोंकि टटोरत ॥
कहुँ शृगाल कोउ मृतक अंगपर ताक लगावत ।
कहुँ कोउ शवपर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ।
जहँ तहँ माँस रुधिर लखि परत बगोर ।
जित तित छडके हाडश्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ॥
भये एकठा आनि तहाँ डाकिन पिशाचगन ।
कूदत करत कलोल किलकि दौड़त तोड़त तन ॥
आकृति अतिविकराल धरे कैलासे कारे ।
वक्र वदन लघु लालनयन जुत जीभ निकारे ॥
कोऊ कडाकड हाड चाबि नाचत दै ताली ।
कोऊ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली ॥
कोऊ अँतडीकी पहिरि माल इतराइ दिखावत ।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत ॥
कोउ मंडनि लै मानि मोद कंदकसों डारत ।

कोउ रुंडनिपै बैठि करै जो फारि निकारत ॥
ऐसे अवसर कठिन सबहि विध धीर नसावन।
नृप दृढ़ताके कसन हेत हरि कीन्ह गुनावन ॥

इसवर्णनमें जुगुप्सा अर्थात् घृणा स्थायीभाव है। अ
जले शव तथा पिशाचोंका दर्शन आलंबनविभाव है।
वोंका जलना उनकी दुर्गंध, कुत्ते शृगालोंका शवको
करना, डाकिनी, पिशाचिनी आदिका रुधिरपान करना
भृति घटना उद्दीपनविभाव हैं । इन सब घोरघटनाओं
देख हतधैर्य हो रोमांचित होना अनुभाव है और मोह
उत्पन्न होना व्यभिचारीभाव है। यहां कविको राजा ह
श्चंद्रके चित्तकी दृढ़ताका वर्णन करना अभीष्ट होनेके क
रण उसने अनुभाव तथा व्यभिचारीभावोंको भलीभाँ
अभिव्यक्त नहीं होनेदिया है तथापि उनकी स्वाभाविक
" ऐसे अवसर कठिन सबहि विध धीर नसावन " पं
द्वारा सूचित कराही दी है सो मर्मज्ञपाठक समझही लेंगे

औरभी—कवित्त।

बरषांके सरे मरे मृतकहूँ खात ना,
घिनातकरै कृमिभरे मांसनके कौरको।
जीवत बराहको उदर फारि चूसत है,
[illegible]

देखत सुनत सुधि करतहूं आवै घिन,
साजै सब अंगनिधि नावनेही डोरको ।
मतिके कठोर मानि धरमको तौर करै,
करम अघोर डरै परम अघोरको ॥

इसके विभावादिकोंको पाठकगण अपनी बुद्धिसे जान लेवें ।

इसकेभी स्वनिष्ठ और परनिष्ठ ऐसे दोभेद हैं । उक्त वर्णन परनिष्ठका उदाहरण है । विरक्तजन जहां अपनी पंच भौतिक देहको रक्त मांस निर्मित मल मूत्रभरित कह उसपर घृणा प्रकाशित करते हैं वहां स्वनिष्ठ जानना चाहिये।

८ अद्भुतरस ।

विस्मयकी परिपूर्णावस्थाको अद्भुतरस कहते हैं लोको-

विभाव। } त्तररूप, सौंदर्य, शिल्पआश्चर्य्योत्पादक आलाप मनोहर पदार्थका दर्शन, इंद्रजालकी चपलता-दिसे इसकी उत्पत्ति तथा वृद्धि होती है अतः यह सब इसके विभाव हैं इसके प्रादुर्भूत होनेही मनुष्य सहसा आश्चर्यचकि-

अनुभाव। } त होजाता है टक लगाकर आश्चर्यजनक वस्तुकी ओर निहारते रहना है, शिरःप्रकंपपूर्वक उसकी प्रशंसा करता है और स्तंभ स्वेद रोमांचादिका होना यह सब इसके अनुभाव हैं । आगे उसे जड़ता, मोहमति

व्यभिचारी भाव। } और हर्ष प्रभृति जो भाव उत्पन्न होते हैं वे सब संचारीभाव हैं ।

यथाः—चौपाई।

सती दीख कौतुक मगजाता। आगे राम सहित सिय भ्रात
फिरि चितवा पाछे सोइ देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेश
जहँ चितवा तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना
देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एकते एका
वंदत चरण करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सबदेवा

दोहा—सती विधात्री इंदिरा, देखीं अमित अनूप।
जिहिं २ वेष अजादि सुर, तिहिं २ तनु अनुरूप॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। शक्तिन सहित सकल सुर तेते
जीव चराचर जे संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु वेखा। रामरूप दूसर नहिं देखा
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित सुवेष घनेरे
सोइ रघुवर सोइ लक्ष्मण सीता। देखिसती अति भयी सभीता।
हृदय कंप तनु सुधि कछु नाही। नयन मूँदि बैठीमगु माहीं॥
बहुरि विलोकेउ नयन उघारी। कछुन दीख तहँ दक्षकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ रामपद शीशा। चली सती जहँ रहे गिरीशा॥

इस वर्णनमें सतीका आश्चर्य्य स्थायीभाव है जो कि,
श्रीराम–लक्ष्मण– सीताजीके मार्गमें सहसा दृग्गित होनेसे

उत्पन्न हुआ है एतावता वह यहां आलंबनविभाव हैं। आगे नाना ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा मुनीशोंके दर्शनद्वारा सतीका आश्चर्य्य औरभी उद्दीपित हुआ है अतः यह सब उद्दीपन विभाव हैं। इन उद्दीपक कारणोंद्वारा सतीका आश्चर्य्य जब बढ़के पूर्णावस्थाको प्राप्त हुआ तब वह सतीके हृदयकंप तथा स्तंभादि अनुभावोंद्वारा व्यक्त हुआ एतावता वह सब अनुभाव हैं। सतीका मोहको प्राप्त होना संचारीभाव है। इसप्रकारसे सतीका आश्चर्य्य पूर्णावस्थाको प्राप्त हो यहां रससंज्ञाको प्राप्त हुआ है।

विरोधाभास, चित्रोक्ति, अत्युक्ति और भर्मोक्ति प्रभृति अलंकारोंमें प्रायः अद्भुतरसही पाया जाता है। रसतरंगिणी रचयिताकी सम्मति है कि, नाटकोंमें समस्तरस परनिष्ठ एवं अद्भुतही रहा करते हैं। इस दूसरी बातका समर्थन धर्म्मदत्तने यों किया है।

श्लोक—रसे सारश्चमत्कारःसर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतोरसः॥

अर्थात् रसमें प्रधानता चमत्कार अर्थात् चित्त विस्ताररूप विस्मयकोंही प्राप्त है एतावता विस्मयसे उत्पन्न होने वाला एकमात्र अद्भुतरसही सर्वत्र पाया जाता है।

९ शांतरस।

निर्वेदकी परिपुष्टताको शांतरस कहते हैं। पीछे यह दृष्टि

खित होही चुका है कि, विषयसुखतिरस्कारको निर्वेद कहतेहैं इसका आलंबन आत्मशरीरही होताहै।क्योंकिआत्मोन्नतिके

विभाव। } हितार्थही महात्मापुरुष दुःखमय विषयसुखका परित्यागकर परमार्थसाधन किया करते हैं। यह

नेर्वेद प्रायः पुण्यतीर्थ,पुण्यक्षेत्र,महापुरुषोंके दर्शन तथा समा- ाम मुनिजनोंके निवासस्थान शरीरकी क्षणध्वंसिता, भगवद्गुण श्रवणादिसे उत्पन्न होता है अतः यह सब उसके विभाव हैं सकी उत्पत्तिके अनंतर मनुष्यके चित्तमें जो भूतदया उत्पन्न

नुभाव। } होतीहै, मुख प्रसन्न होता है, प्रेमाश्रु बहने लगते हैं, रोमांच होता है, सो सब अनुभाव हैं । उस

मयपर चिन्ता, मति, स्मृति, धृति, हर्षादि जो मनोविकार त्पन्न होकर निर्वेदको परिपुष्ट करते हैं ये सब व्यभिचारी- ाव हैं ।

यथाः–सवैया ।

ोगमें रोग वियोग सँयोगमें योग ये काय कलेश कमायो।
ोपदमाकर वेद पुराण पढ्यो पढिकै बहु बादबढायो ॥
ान्यो दुरासमें दास भयो पै कहूँ बिसरामको धाम न पायो।
ायो गमायो सु ऐसेही जीवन हाय मैं रामको नाम न गायो॥

इसपद्यमें किसीभक्तको संसारकी यावत् बातें दुःख- रित निश्चित होनेपर उसे निजके विषयमें निर्वेदन उत्पन्न ा है अतःयहां पर उसका आत्मशरीर आलंबनविभावहै।

और यह "मैंने रामका भजन नहीं किया" ॥ इस उद्दीपनविभावसे उद्दीपित हुआ है अतःयह उद्दीपन विभाव है। आगे उसका निर्वेदमत्यादि व्यभिचारीभाव तथा तत्प्रसंगानुमोदित क्रियानुरूप अनुभावोंद्वारा पुष्ट हो रससंज्ञाको प्राप्त हुआ है।

यह "निर्वेद" संज्ञक स्थायीभावसे उत्पन्न होनेवाले "शांत" रसका उदाहरण है। काव्य प्रकाशकर्ता तथा हमारे भाषाचार्य्य कविवर केशवदासजी तथा पद्माकरजीनेभी "शांत" रसका स्थायीभाव निर्वेदही माना है, परंतु अष्टादशभाषावारविलासिनी भुजंगमहाराजजीने 'शांत' रसको "शम" स्थायीभावात्मक माना है और उसके विभावादिक भिन्नप्रकारके यों माने हैं।

काम, क्रोध तथा संकल्प विकल्प रहित अंतःकरणकी स्वस्थावस्थाको "शम" कहते हैं। "शांत" रसका स्थायीभाव यही "शम" है, निर्विकार ईश्वरस्वरूप इसका आलंबनविभाव तथा संसारकी अनित्यता उद्दीपनविभाव हर्ष मति तथा निर्वेदादि व्यभिचारी और रोमांचादि अनुभाव हैं। एकस्थानपर शांतरस इसप्रकारसे वर्णित कियागया है:—

"न यत्र दुःखं न सुखं न चिंता न द्वेष रागौ नचकाचि दिच्छा।
रसः सशांतः कथितो मुनींद्रैः सर्वेषु भावेषु शमः प्रधानः" ॥

---

१ 'शम' संज्ञक स्थायीभावात्मक 'शांत' रसका 'निर्वेद' व्यभिचारीभाव है, और 'निर्वेद' स्थायीभावात्मक 'शांत' रसका वह 'स्थायी' भाव है।

अर्थात् जिस चित्तवृत्तिमें सुख दुःख चिंता राग द्वेष और किसी प्रकारकी इच्छाकी स्थिति नहीं रहती उसी श्रेष्ठ चित्तवृत्तिको महर्षिलोगोंने 'शांत' रस कहा है। यहांपर यह शंका उपस्थित होती है कि, जब कि—उसमें सुख नहीं है तब उसे रस माननाही अनुचित है, क्योंकि प्रथम तो रस आनंदमय है. और दूसरे रसको पुष्ट करनेवाले संचारीभावोंका उसमें संचार होता है। और निरहंकार वृत्तिमें व्यभिचारीभावकी संभावना नहीं पायी जाती एतावता 'शम'को रसत्व प्राप्त नहीं होसकता। ईसशंकाका समाधान इसप्रकारसे किया जाता है कि, लक्षणमें जो सुखाभावकहा गया है उससे विषयविषयक सुखका अभाव ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि शास्त्रप्रणेतृ लोगोंने कहाहै कि, निष्पृहावस्थामें वैषयिक सुखकी अपेक्षा कहीं अधिक सुख है[1]। इससे यहा प्रतिपादित हुआ कि 'शांत' रसमें सुखाभाव नहीं मानना चाहिये वैसेही उसमें व्यभिचारिभावोंका संचारभी होसकता है।

क्योंकि जिसमनुष्यको संसारकी अनित्यता ज्ञात हो अद्वैतका ज्ञान होजाता है वह यदा कदा जनक याज्ञवल्क्य प्रभृतिकी नाई संसारिक कार्य्योंको निःसंगतापूर्वक

---

१ यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महासुखम् ।
तृष्णा क्षयसुखस्यैतेनार्हतःषोडशींकलाम् ॥

होना मनोवृत्तिका अहंकाररूपका धर्म्महै और दयावीरमें यही प्रधान रहता है परशममें तो निरहंकारता रहती है। ऐसी अवस्थामें शांतरस दयावीरांतर्गत कैसे होसकता है मानों इसशंकाको दूरकरनेके हेतुही महापात्रजीने अपने साहित्य दर्पणमें " आदि शब्दात् धर्मवीर दानवीर देवताविषय रति प्रभृतयः"॥ (अर्थात् धर्मवीर दानवीर और देवताविषयक रतिमें जब देहाभिमानकी शून्यता पायीजाती है तब मात्र वे शांतरसमें अपरिणत होसकते हैं) लिखदिया है । इसी प्रकारसे ईश्वरभक्तिरूप रतिभावमेंभी शांतरसका अंतर्भाव नहीं होसकता । क्योंकि भक्तिमेंभी सेव्यसेवकरूप अहंकार पायाजाताहै ।

दशरूपकके टीकाकार धनिककी सम्मति है कि, दृश्यकाव्यमें समस्तक्रिया शून्यतारूप शमका नटद्वारा अभिनीत होना असंभव होनेके कारण अभिनय प्रधान नाटकमें शम स्थायीभावात्मक शांतरस आही नहीं सकता । नागानंदनाटकमें यद्यपि शांतरस प्रधान है, तथापि यहां वह मलयवतीके अनुराग और नायक जीमूतवाहनको विद्याधरोंके राज्यकी प्राप्तिके आश्रयसे आया है । अभिप्राय यह है कि, यहां यह स्वतंत्ररूपसे नहीं आया है । इसके विषयमें महाराजने लिखा है कि, जीमूतवाहनको मलयवतीका अनुराग और विद्याधरोंके राज्यकी प्राप्तिकी इच्छा होनेके पश्चात्

वत्सलरस ।

यहांलों सर्वप्रसिद्ध नवरसोंका वर्णन हो चुका।अब आगेक तिपय ग्रंथकारोंकेमानेहुए अधिकरसोंकी आलोचना की जाती है, महापात्रजीने अपने साहित्यदर्पणमें वत्सल नामक १० रसका उल्लेख किया है। पुत्र बंधु संबंधिनी वत्सलतारूप प्रीति अर्थात् स्नेह इसका स्थायी भाव है । बंधु पुत्रादिके आश्रयसे इसकी स्थिति पायी जाती है अतः वे इसके आलंबन विभाव और उनकी क्रिया चेष्टा और उनके प्राकृतिक सौंदर्य परिरंभणादिसे यह अभिवृद्ध होता है अतः वे सब इसके उद्दीपन विभाव हैं । इसकी उत्पत्तिके अनंतर मनुष्य बालकोंका जो चुंबन करता है उनके शिरका आघ्राण लेता है, उसके प्रेमाश्रुप्रवाहित होते हैं उसका शरीर रोमांचित होता है सो सब अनुभाव हैं । इसके अनंतर शंका, गर्व हर्षादि जो भाव उत्पन्न होते हैं वे संचारीभाव हैं । अपरग्रंथकारों ने इसे स्वतंत्र रस नहीं माना है किंतु पुत्रविषयक रतिसंज्ञक भाव माना है । (भावोंकावर्णन आगे किया जायगा ।)

विभाव ।

अनुभाव ।

व्यभिचारी। भाव।

यथाः—तु० कृ० रा०—चौपाई ।

काम कोटि छबि श्याम शरीरा। नीलकंज वारिद गंभीरा ॥
अरुण चरण पंकज नख ज्योती। कमल दलन जनु बैठे मोती।

प्रेयान्रस।

रुद्रटने अपने काव्यालंकारसंज्ञक ग्रंथमें प्रेयान् नाम
औरभी एक रसका उल्लेख किया है। इसका स्थायीभ
स्नेह (प्रेम) मानागया है। पूर्वोल्लिखित वात्सल्यरस
स्थायीभाव स्नेह वत्सलताजनित है पर इसका स्थायीभ
स्नेह मित्रतोत्पन्न है। यह स्नेह मित्रता विषयक होने
विभाव। कारण मित्रही इसका आलंबनविभाव है य
मित्रविषयक स्नेह, तत्समागम उसका निज
विषयमें निर्व्याज स्नेह, विनोदप्रमुख आलाप, उसके सद्गु
प्रभृतिसे यह उत्पन्न और उद्दीपित होता है अतः यह स
उसके विभाव हैं। स्नेहकी उत्पत्तिके अनंतर मित्र मित्रक
ओर जो वह प्रेमपूर्वक निहारता है, उसका कंठ प्रेमसे गद्‌
अनुभाव। होआता है, रोमांच होता है सो सब अनुभा
हैं। इसके अनंतर स्मृति, हर्ष, गर्व तथा मति
व्यभिचारी भाव। प्रभृति जो भाव उत्पन्न होते हैं वे सब संचारी
भाव हैं।

यथाः—सोरठा।

सुनत सुदामा मीत, ठाढे है निज पौंरि अब।
धाये श्याम सप्रीति छोडि, राजके काज सब॥

कवित्त।

सुनत सुदामा नाम छोडिके सकाम धाम,

धाये घनश्याम इतमाम बिसराइकै।
डह डहे वारिजसे नैनमें बार बार,
भरि भरि आवै वारि पूर हरवाइकै ॥
ऐसे कछु आनँदमें मगन बिहारी भये,
मोपै नहिं तैवै कहे जाहि गुण गाइकै ।
अनगने भोग रजधानी सब भूलगई,
दीनबंधुजूका तहँ दीनद्विज पाइकै ॥ १ ॥

इन पद्योंमें सुदामा आलंबनविभाव हैं और उनके विषयमें श्रीकृष्णके मनमें जो मित्रताजनित स्नेह उत्पन्न हुआ है वह स्थायीभाव है और वह स्नेह सुदामाके दर्शनस्वरूप उद्दीपनविभावद्वारा अभिवृद्ध हो हर्षादि व्यभिचारीभावद्वारा परिपुष्ट हुआ है और श्रीकृष्णके राजकाज बिसराकर दौडजाने तथा उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाहितहोनादि अनुभावोंद्वारा व्यक्तहो रससंज्ञाको प्राप्त हुआ है ।

तृतीयक्यारी ।

भावनिरूपण ।

यहांलों रसोंके भेदोंकी सोदाहरण आलोचना कीगयी, अब आगे भावोंकेविषयमें मीमांसा कीजाती है ।

जैसे विभाव अनुभाव और संचारीभावकी सहायतासे स्थायीभावसंज्ञक मनोविकार पूर्णावस्थाको प्राप्तहो रससंज्ञाको प्राप्तहोता है वैसेही पूर्वोल्लिखित ३३ संचारी भाव, मित्र, गुरु

देवता ऋषि, राजा, बंधु और पुत्रादि विषयक भक्तिवा स्नेह-स्वरूपरतिप्रेम जब विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावद्वारा परिपुष्ट होते हैं तब उन्हें 'भाव' कहते हैं। यह 'भाव' संज्ञक मनोविकार अस्थिर एवं चंचल होते हैं और इनमें स्थायी भावके धर्म नहीं पाये जाते एतावता यह रससंज्ञाको प्राप्त नहीं हो सकते. परंतु काव्यालंकारप्रणेता रुद्रटकी सम्मति है कि, जिस प्रकारसे पदार्थोंका स्वाद लेनेसे मधुरादिक रसोंका ज्ञान होसकता है वैसेही स्थायीभावका स्वाद मिलना संभव होनेके कारण उसे भरताचार्य्यके प्रतिपादनानुसार रस कहसकते हैं। और अनुभवसे भी यह बात ज्ञात होती है कि, निर्वेदादि भावोंके परिपुष्ट होनेपर रसोंकी नाईं उनका स्वाद प्राप्त हो-सकता है। ऐसी अवस्थामें निर्वेदादिक भावोंके रस माने जानेमें कोई शंका नहीं बोध होती इस मतका समर्थन उक्त ग्रंथके टीकाकार नमि साधुने यों कियाहै कि जो निर्वेदादिक भाव पूर्णावस्थाको प्राप्त होते हैं वे रससंज्ञाको प्राप्त हो स-क्ते हैं और जो परिपुष्ट नहीं होते वे भाव कहे जाते हैं ऐसा ग्रंथकारका अर्थात् रुद्रटका अभिप्राय ज्ञात पड़ता है. क्योंकि ऐसी कोई भी नियुक्ति नहीं है कि, जो परिपुष्ट हो रसत्व न होवेगा। [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]।

रुद्रटकी उक्त संमतिके खंडनस्वरूपमें धनिकने लिखा है कि, किसी स्थायीभावको रससंज्ञाको प्राप्त होनेके लिये उसमें विरुद्धाविरुद्ध भावोंको अपनेमें लीन करलेनेकी शक्ति परमावश्यक है । यह शक्ति निर्वेदादिकोंमें नहीं पायीजाती एतावता वे रससंज्ञाको प्राप्त नहीं होसकते । अस्तु अब नीचे उक्त भावोंके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं ।

गुरुविषयक रतिभावका उदाहरणः—

चौपाई ।

बंदौं गुरुपद पद्म परागा । सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥
अमिय मूरिमय चूरण चारू । शमन सकल भवरुज परिवारू ॥
सुकृत शंभुतनु विमल विभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
जनमनमंजु मुकुरमलहरणी । किये तिलकगुणगण वशकरणी ॥
श्रीगुरुपदनखमणिगण ज्योती । सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती ॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू । बड़े भाग उर आवहि जासू ॥
उघरहिं विमल विलोचन हीके । मिटहिं दोष दुख भव रजनीके ॥
सूझहिं रामचरितमणिमानिक । गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥

दोहा—यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं शैलवन, भूतल भूरि निधान ॥

उक्त पद्योंमें गुरु आलंबनविभाव हैं इनका महत्त्व गुणिभाव औ गुरुचरणरजकी अलौकिक शक्तिस्वरूप उद्दीपनविभावद्वारा अभिव्यक्त होकर कविहृदयके रतिभावको पुष्ट-

द्वारा विस्तृत हो गुरुचरणोंको नमनकरनादि अनुभावों-द्वारा व्यक्त हुआ है ।

ऋषिविषयक रतिभावका उदाहरणः—

सो०—बंदौ मुनिपद कंज, रामायण जिन निर्मयो ।
सखर सुकोमलमंजु, दोषरहित दूषण सहित ॥

उक्तपद्यमें आद्यकवि श्रीवाल्मीकिजी आलंबनविभाव है और तद्विषयक वक्ताका रतिभाव जो तत्प्रणीत लोकोत्तर गुण विशिष्ट रामायण स्वरूप उद्दीपनविभावद्वारा उद्दीपित होकर सति हर्षादि व्यभिचारी भावोंद्वारा विस्तृत हो वंदन करना स्वरूप अनुभावद्वारा व्यक्त हुआ है ।

राजाविषयक रतिभावका उदाहरणः—

सो०—बंदौंअवधभुवाल, सत्यप्रेम जिहिं रामपद ।
बिछुरत दीनदयालु, प्रियतन तृण इव परिहरेउ ॥

इसपद्यमें राजा दशरथ आलंबनविभाव है वक्ताका तद्विषयक रतिभाव उनके रामपदमें सत्यप्रेमादि गुण स्वरूप उद्दीपनविभावद्वारा उद्दीपित होकर मति हर्षादि व्यभिचारी भावद्वारा विस्तृत हो नमनकरनादि अनुभावद्वारा व्यक्त हुआ है।

ईश्वर विषयक रतिभावका उदाहरणः—

यथा—चौपाई ।

बिनपद चलै सुनै बिन काना । कर बिन कर्म्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी ॥
तन बिन परस नयन बिन देखा । ग्रहै घ्राण बिनवास अशेषा॥

अस सब भाँतिअलौकिककरणी।महिमाजासुजायनहिंबरणी॥
भइ रघुपतिपद प्रीति प्रतीती । दारुण असंभावना बीती ॥
दोहा—पुनि पुनि प्रभुपद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि॥
बोली गिरिजा वचनवर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥

इसपद्यमें ईश्वर (रामचंद्रजी) आलंबनविभाव हैं और भक्तका (पार्वतीका) रतिभाव ईश्वरकी अलौकिक शक्ति गुण स्वरूप उद्दीपनविभावोंद्वारा उद्दीपित हो मति हर्षादि व्यभिचारीभावोंद्वारा विस्तृत हो हाथ जोड़ नमनकरनादि अनुभावोंद्वारा व्यक्त हुआ है ।

पुत्रविषयक रतिभावका उदाहरणः—

यथाः—सवैया ।

चूँबिबेके अभिलाषन पूरके दूरते माखन लीन्हे बुलावति ।
लाल गुपालकी चालबकैयन दौसजु देखतहीं बनि आवति ।
ज्यों ज्यों हँसै बिकसैं दँतियाँ मृदु आनन अंबुजमें छवि छावति।
त्यों त्यों उछंगले प्रेम उमंगसों नंदकि रानि अनंद बढावति ॥

इसपद्यमें गोपाल (श्रीकृष्ण) आलंबनविभाव हैं और तद्विषयक यशोदाजीका प्रेम पुत्रविषयक रतिभाव है । यह रतिभाव श्रीकृष्णजीके हँसने आदिसे उद्दीपित होकर हर्षादि व्यभिचारी भावद्वारा विस्तृत हो यशोदाजीके श्रीकृष्णजीको गोदमें लेना, उन्हें चूमनादि अनुभावोंद्वारा व्यक्त हुआ है ।

यह बात विशेषरूपसे ध्यानमें धारण करने योग्य है कि, केवल नायक नायिका विषयक रतिही शृंगाररससंज्ञाको

प्राप्त होती है और अपर विषयक समस्त रतिभावांतर्गत मानी जाती हैं[१] ।

मनुष्यकी बाल्य युवा तथा वृद्धता अवस्थाकी नाईं भावोंकी भी उदय १, शांति २ संधि ३ और शबलता ४ ऐसी चार अवस्थाएँ हैं उनका नीचे लक्षण लक्ष्यसहित समास वर्णन किया जाता है ।

१उदय—जब भाव अपर सामग्री प्रबल न होनेके कारण केवल अंकुरित होकरही रहजाता है तब उसे भावोदय कहते हैं । पीछे स्थायीभावके जो उदाहरण दिये गये हैं वे प्रायः इसीमें परिणत होते हैं ।

यथा—

दोहा—बेंदी पियपटसों लगी, लीनी अली उतारि ।
बूडिगई अवलोकि उत, सकुच सिंधु सुकुमारि ॥

इसदोहेमें नायिकाकी बेंदी नायकके वस्त्रमें लगी हुई देख सखीने उसे नायिकाके देखते निकाल लिया इसघटनाको देख नायिकाके मनमें व्रीडासंज्ञक व्याभिचारीभावका यहां उदय हुआ है ।

२ शांति—जब एक भाव उत्पन्न होकर बढने नहीं पाता है कि, उतनेहीमें दूसरा भाव उत्पन्न होकर प्रबल होजाता है

---

१ भाँति नायिका नायकहि, जो शृंगाररस ठाउ ।
बालक मुनि गहिराउ अरु, देवविषै रतिभाउ ॥
काव्यनिर्णय ।

और पूर्वोत्पन्न भाव तत्क्षण लयको प्राप्त होजाता है तब उसे भावशांति कहते हैं ।

यथा–

दोहा–अटा दुरीमें निरखिहरि, कौंधाकीसीछाँह ।
चकित ह्वै समुझे बहुरि । लखि राधेकी बाँह ॥

यहां कौंधाकीसी छायाको देखकर हरिके मनमें जो विस्मय भाव उत्पन्न हुआ था उसे राधाके बाँहस्वरूप मति संचारीभावने तत्क्षण शांत करदिया । और भी–

सवैया–आईनजोवक बायरे पेद्विजु देवज हंसनकी तो गईगति।
मेदक मीन न मान कन्यो तो भईहै कहा अरविंदनकी छति ॥
उक्ति उदार कविंदन पै बनवासिनकी सुगई न भई रति ।
जोपै गंवार न लीन्हीं नतोघटि जाति जवाहिरकीकहूँ कीमत॥

३ संधि–जब एक भाव मनको एक ओर आरुष्ट करता है और दूसरा भाव उसे दूसरी ओरको आरुष्ट करता है तब उसे भावसंधि कहते हैं ।

यथाः–चौपाई ।

नीके निरखि नयनभरिशोभा । पितुप्रणसुमिरियहुरिमनशोभा॥

यहां सीताजीके मनको एक ओर रामचंद्रजीकी शोभाजन्य हर्ष और दूसरी ओर पिताके कठिन प्रणस्वरूप स्मृति व्यभिचारी आरुष्ट कररहे हैं अतः उक्त उभयभावोंकी यहां संधि हुई है।

४ शबलता—जब एकभावको दूसरा दूसरेको तीसरा और तीसरेको चौथा भाव दबादेता है वा एक साथ कई भाव उत्पन्न होते हैं तब उसे भावशबलता कहते हैं ।

यथाः—दोहा ।

सियशोभा हिय बरणि प्रभु, आपनि दशा बिचारि ।
बोले शुचि मन अनुजसन, बचन समय अनुहारि ॥

चोपाई ।

तात जनक तनया यह सोई । धनुषयज्ञ जिहिं कारण होई ॥
पूजन गौरि सखी लै आई । करति प्रकाश फिरति फुलवाई ॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा । सहज पुनीत मोरमन क्षोभा ॥
सो सब कारण जान विधाता।सुभग अंग फरकहिं सुनु भ्राता ॥
रघुवंशिनकर सहज सुभाऊ।मन कुपंथ पग धरहिं न काऊ ॥
मुहिं अतिशय प्रतीत मन केरी।जिहिं सपनेहु परनारि न हेरी॥
जिनकी लहहिं न रिपुरण पीठी।नहिं लावहिं परतियमन डीठी॥
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं । ते नरवर थोरे जगमाहीं ॥

दोहा—करत बतकही अनुजसन, मनसिय रूप लुभान ।
मुख सरोज मकरंद छवि, करत मधुप इव पान ॥

जिस समय सीताजीको श्रीरामचंद्रजीने विदेह राजकी पुष्पवाटिकामें देखा था और उनके अलौकिक रूप लावण्यको देख वे उनपर आसक्त होगये थे तबकी यह श्रीराम- [illegible] उक्ति है । यहां प्रथम रामचंद्रजीको पहिले वितर्क

हुआ कि, सूर्य्यवंशी राजाका परस्त्रीपर आसक्त होना अकार्य है पर इसभावको शुभांगके फरकतेही मतिरूप संचारी भावने दूर करदिया और श्रीरामचंद्रजी निःशंक हो सीताजीकी मुख छविको अत्यंत अनुरागपूर्व्वक निहारने लगे । यहां प्रथमको दूसरे और दूसरेको तीसरे भावने जो दबादिया है सोई भावशबलता है । और भी–

दोहा–हरिसंगति सुखमूल सखि, पै परपंची गाउँ ।
तू कहु तौ तजि शंक उत, दृग बचाइ द्रुत जाउँ ॥

यहां नायिका सखीसे कहती हैं "हे सखि हरिकी संगति सुखजनक है" इससे व्यंजित हुआ कि, उसे हरिसे मिलनेकी उत्कंठा उत्पन्न हुई पर इसभावको गाँवके लोग बडे प्रपंची हैं इसशंकाने दबादिया, परंतु पुनः नायिका सखीसे कहती है 'यदि तेरी सम्मति होतो मैं हरिके निकट जाऊं' अर्थात् उसे शंकारूप जो दूसराभाव उत्पन्न हुआ था, उसे इसतीसरे धृतिआवेग और आतुरतादि रूपभावोंने पुनः दबादिया प्रथम उत्कंठाको शंकाने दबादिया और शंकाको धृति आदि ने दबाया अतः यहां भावशबलता अवस्था हुई है ।

चतुर्थक्यारी ४.

रसाभास और भावाभास निरूपण ।

पूर्वोल्लिखित रस और भावोंका जहां अनुचित प्रसंग हो

अयोग्य रीतिसे वर्णन किया जाता है वहां उन्हें यथाक्रम रसाभास और भावाभास कहते हैं । यद्यपि यह अनुचित माने जाते हैं तथापि रस और भावकी नाईं आस्वाद्यमान होनेके कारण रसशास्त्रमें इनका ग्रहण किया जाता है ।

रसाभास ।

१ शृंगाररसाभास—जब अनुचित प्रेमका वर्णन किया जाता है जैसे नीच स्त्रीपर उत्तमपुरुषका प्रेम वा उत्तम स्त्रीपर नीचपुरुषका प्रेम, परस्त्री संबंधी प्रेम, एकस्त्री वा पुरुषका अनेक पुरुष वा स्त्रीपर प्रेम, सामान्या विषयक प्रेम, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष प्रभृतिका प्रेम, तब उसे शृंगार रसाभास कहते हैं ।

दो०—जे सजीव जग चर अचर, नारिपुरुष असनाम ।
ते निज निज मर्य्यादतजि, भये सकल वशकाम ॥

सबके हृदय मदन अभिलाखा, लताविलोकि नवहिं तरुशाखा ॥
नदी उमँगि अंबुध कहधाई । संगम करहिं तलाव तलाई ॥
जहँ असदशा जडनकी बरणी । को कहि सकै सचेतनकरणी ॥
पशु पक्षी नभ जलथलचारी । भये कामवश समयबिसारी ॥
मदन अंध व्याकुलसबलोका। निशिदिननहिंअवलोकहिंकोका ॥
देवदनुज नर किन्नर व्याला । प्रेत पिशाच भूत बैताला ॥
इनकी दशा न कहहुँ बखानी । सदाकामके चेरे जानी ॥
सिद्ध विरक्त महामुनि योगी । तेपी कामवश भये वियोगी ॥

---

१ राधाजी परकीया होनेके कारण श्रीराधाकृष्णका शृंगारवर्णन शुद्ध शृंगाररस नहीं होसकता। किंतु वह शृंगाररसाभास कहा जासकताहै

यहांपर लता, वृक्ष, नदी, समुद्र, तालतलाई, पशु, पक्षी, मुनि, योगी प्रभृतिका जो अनुचित शृंगार वर्णन है सो शृंगार रसाभास है ।

२ हास्यरसाभास—जब देवता, गुरु, मुनि तथा पूज्य-पुरुषोंके कर्मका उपहास वर्णन कियाजाता तब उसे हास्य-रसाभास कहते हैं ।

यथाः—दोहा ।

सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरिसंभव तवदेह ।
नारदकर उपदेश सुनि, कहहु बसे को गेह ॥

चोपाई ।

दक्षसुतन उपदेशेउ जाई । तिन फिर भवन न देखेउ आई ॥
चित्रकेतुकर घर उनघाला । कनक कशिपुकर पुनि असहाला ॥
नारद शिखजो सुनहिं नरनारी । अवशि भवनतजि होहिं भिखारी ॥
मनकपटी तन सज्जन चीन्हा । आप सरिस सबही चह कीन्हा ॥
तेहिके वचन मानि विश्वासा । तुमचाहति पति सहज उदासा ॥
निर्गुण निलज कुवेष कपाली । अकुल अगेह दिगंबर व्याली ॥
कहहु कवनसुख अस बर पाये । भलि भूली ठगके बौराये ॥
पंच कहहिं शिवसती बिवाही । पुनि अवडेरि मराइन्ह ताही ॥

दो०—अब सुखसोवत शोच नहिं । भीखमांगि भवखांहि ।
सहजएकाकिन के भवन, कबहुँकि नारि खटांहि ।

यहां देवर्षिनारद तथा शिवजीके कर्मका जो उपहास वर्णित है सो हास्यरसाभास है।

पुनरपि।

दो०—अगुण अमान जानि तेहि, पितादीन्ह वनवास।
सो दुख अरु युवती विरह, पुनि निशिदिन ममत्रास॥

यह श्रीरामचंद्रजीके विषयमें रावणकी उक्ति है। यहां रावणने पूज्यपुरुष श्रीरामचंद्रजीका जो उपहास किया है सोई हास्यरसाभास है।

२ करुण रसाभास—अशोच्यके विषयमें शोक करने वा झूटमूठके शोक प्रदर्शनको करुणरसाभास कहते हैं।

यथाः—दोहा।

सुनि सुत वचन सनेह मय, कपटनीर भरि नयन।
भरतहृदय जनु शूलसम, पापिन बोली वयन॥

चौ०-तातबात मैं सकलसम्हारी। भइ मंथरा सहाय विचारी॥
कछुक काज विधिबीच बिगारा। भूपति सुरपतिपुरपगुधारा॥

यहाँ दशरथराजाकी मृत्युपर कैकेईने झूठ मूठके नेत्रों में अश्रुला भरतजीके समीप जो शोक प्रकाशित किया है सो अयथार्थ होनेके कारण करुणरसाभास हुआ है।

४ रौद्ररसाभास—पूज्यपाद पुरुषपर क्रुद्ध होने वा अयथार्थ क्रोध प्रकाशित करनेको रौद्ररसाभास कहते हैं।

५ वीररसाभास—अकार्यविषयक उत्साह वा अयथार्थोत्साह वर्णनको वीररसाभास कहते हैं।

६ भयानकरसाभास—अयथार्थ भय प्रदर्शनको भयानकरसाभास कहते हैं ।

७ वीभत्सरसाभास—उत्तम वस्तुके विषयमें जुगुप्सा प्रदर्शित करने वा अयथार्थ जुगुप्सा प्रदर्शित करनेको वीत्सरसाभास कहते हैं ।

८ अद्भुतरसाभास—अनाश्चर्य्योत्पादक पदार्थको देख आश्चर्य्य वर्णन करने वा अयथार्थ आश्चर्य्य वर्णन करनेको अद्भुतरसाभास कहते हैं ।

९ शांतरसाभास—मिथ्या वैराग्य एवं भक्तिके वर्णनको शांतरसाभास कहते हैं ।

यथाः—दोहा ।

कपट बोरि बाणी मृदुल, बोलेउ युक्ति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धनरहित निकेत ॥

चौपाई ।

सबप्रकार राजहिं अपनाई । बोला अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सतिभाव कहौं महिपाला । यहाँ बसत बीते बहुकाला ॥
ताते गुप्त रहहुँ जगमाहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये । कहहु कवनविधिलोक रिझाये ॥

यहां कपटमुनिने अपना जो वैराग्य वर्णित किया है सो सत्य नहोनेके कारण शांतरसाभास हुआ है ।

इसीप्रकारसे वत्सलादिरसोंके विषयमें भी पाठकगण रसाभासों [illegible] ।

भावाभास।

इसप्रकारके अनुचित एवं मिथ्याभाववर्णनको भावाभास कहते हैं।

दो०—जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप, सुनु महीप असनीति।
परम चतुरता निरखि तव, मम तुहिंपर अति प्रीति॥

चौपाई।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेशा। सत्यकेतु तव पिता नरेशा॥
गुरुप्रसादसबजानियेराजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥
देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुणाई॥
उपज परी ममता मन मोरे। कहउ कथा बिन पूछे तोरे॥

यह भी कपटमुनिकाही कथन है यहां कपटमुनिने अपना कार्य्य सिद्ध करनेके अभिप्रायसे राजापर कपटप्रेम प्रदर्शित किया है अतः यहांपर राजाविषयक रतिभावाभास हुआ है।

पञ्चमक्यारी ५.

रस और भावकी अप्रधानताका निरूपण।

पूर्वोल्लिखित रस, भाव, रसाभास और भावाभास जब प्रधानतापूर्वक वर्णित किये जाते हैं, तब वे अपने २ पूर्वोल्लिखित नामसे ध्वनि माने जाते हैं पर

जब उनका वर्णन गौणतापूर्वक किया जाता है तब वे अलंकार माने जाते हैं और रसवदादि अलंकारके नामसे पुकारे जाते हैं। रसभावादिकोंसे इनका थोड़ा बहुत संबंध होनेके कारण यहांपर इनका समास वर्णन अनावश्यक नहीं बोध होता।

यह रसवदादि अलंकार सात हैं अर्थात् १ रसवत, २ प्रेय, ३ ऊर्जस्वित, ४ समाहित, ५ भावोदय, ६ भावसंधि और ७ भावशबलता। इनके लक्षण और लक्ष्यः—

१ रसवान्—शृंगारादि रस परस्पर वा भावों तथा भावरसाभासोंके अंगसे जहां वर्णित किये जाते हैं वहाँ रसवान् अलंकार मानाजाता है।

यथा—तु० कृ० रा० चौपाई।

कंत समुझि मन तजहु कुमतिहीं। सोह न समर तुमहिं रघुपतिहीं॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोऊ न लाँघेहु असि मनुसाई॥
पानुक सिंधु लाँघि तव लंका। आयउ कपि केशरी अशंका॥
रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तुमहिं अक्ष जेहि मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा॥
अब जनि मृषा भाषिय मन माहीं। कहु तुमहुँ दल गर्व दिखाई॥
भंजि धनुष जानकी बिहारी। तब संग्राम जितेहु किन नारी॥
अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय विचारहु॥

दोहा—पति वि[illegible] समर दूषणहि, जोन्हहि हतेउ रघुबंस।

बालि एक शर मारउ, सो नर क्यों दशकंध ॥
यह मंदोदरीकी उक्ति रावण प्रति है।

यहां भयानकरस पतिनिंदास्वरूप भावाभासके अगसे वर्णित किया गया है अतः यह रसवान् अलंकार है।

२ प्रेय–जहां भावरस वा भावके अंगसे वर्णित किया जाता है वहां प्रेयालंकार माना जाता ह।

यथा–हनुमन्नाटके–सवैया।

तात कह्यो वनवास तुम्हें तुम मोहिं कहो बनहीं फिरि आऊं।
केतक बात सुनो मेरे नाथ हौं भौअनको नेक आयसु पाऊं॥
सीयसों राज्य करो युगलौ पथते भरते मिलहौं पलटाऊं।
जूझि मरों के करौं प्रभुकारज तौ अपनो मुख आन दिखाऊं॥

यह लक्ष्मणजीका वचन श्रीरामचंद्रजीप्रति है यहां बंधु विषयक रतिभाव वीररसके अंगसे आया है अतः यहां प्रेयालंकार हुआ है।

३ ऊर्जस्वित्–जहां रसाभास वा भावाभास अपर अंगोंसे वर्णित किये जाते हैं वहां ऊर्जस्वित् अलंकार माना जाता है।

यथा–तु० कृ० रा० चौपाई।

कह रावण सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करौं प्रण मोरा। एकबार विलोकु मम ओरा॥
तृण धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परमसनेही॥
शठ सूने हरि आनेसि मोहीं। अधम निलज लाज नहिं तोही॥

सुनु दशमुख खद्योतनकाशा । कबहुँ कि नलिनी करहि विकाशा ॥

यहां रावणका सीताविषयक रतिभाव एकांगी होनेके कारण शृंगाररसाभास हुआ है और वह सीताके कोपरूप भावके अंगसे आया है अतः ऊर्जस्वित् अलंकार हुआ है ।

४ समाहित–जहां भावशांति अपरभावके अंगसे वर्णित की जाती है वहां समाहितअलंकार माना जाता है ।

यथा–तु० कृ० रा०चौपाई ।

हर मोहि भई नभ बानी । रे हतभाग्य अधम अभिमानी ॥
यदपि तव गुरु कीन्ह न क्रोधा । अतिदयालुचित सम्यक्बोधा ॥
तदपि शाप देहौं शठ तोहीं । नीति विरोध सुहाइ न मोहीं ॥
जो नहिं करौं दंड खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥
शठ जे गुरुसन ईर्षा करहीं । रौरव नरक कोटि युग परहीं ॥
त्रिजग योनि पुनि धरहिं शरीरा । अयुत जन्मभरि पावहिं पीरा ॥
बैठि रहेसि अजगर इव पापी । सर्प होहु खल मलमतिव्यापी ॥
महाविटप कोटर महँ जाई । रहु रे अधम अधोगति पाई ॥

दो०–हाहाकार कीन्ह गुरु, सुनि दारुण शिव शाप ।
कंपित मोहि विलोकि अति, उर उपजा परिताप ॥
करि दंडवत सप्रम द्विज, शिवसन्मुख कर जोरि ।
विनय करत गद्गद गिरा, समुझि घोर गति मोरि ॥
सुनि विनती सर्वज्ञ शिव, देखि द्विज अनुराग ।
पुनि मंदिर नभवाणी भई, हे द्विजवर वर माँग ॥

यहां शिवजीके कोपरूपभावकी शांति विषानुरागरूप रति भावक अंगसे हुई अतः यहां समाहितअलंकार हुआ है

५ भावोदय,६ भावसंधि और ७ भावशबलता जब अपरअंगसे वर्णित कीजाती ह तब उस २नामका अलंकार माना जाता है।

छटवींक्यारी ६.

रससंकरनिरूपण ।

पूर्व्वोल्लिखित रस और भाव जब ग्रंथप्रणयन वा कविकी इच्छानुसार परस्परमें मिश्रित होजाते हैं तब उन्हें रस-संकर कहते हैं। यह भी रसोंकी नाईंही चमत्कृतिजनक होते हैं अतः इनके विषयमें भी यहांपर थोड़ासा विचार किया जाता है।

रससंकर प्रायः तीनप्रकारसे हुआ करता है। अर्थात कभी जन्यजनकभाव कभी अंगांगिभाव और कभीस्वतंत्रतासे,

१ जन्यजनकभाव–जहां एकरससे दूसरा रस उत्पन्न होता है वहां एक जनक और दूसरा जन्य माना जाता है।

यथाः–कवित्त ।

कत्ताकी कराकन चकत्ताको कटक कट,
कीनी शिवराज बीर अकह कहानियां।
भषन भनत और मुलुक हतिहारी धाक,
दिल्लीके बिलइत सकल बिललानिया ॥
आगरे अगारनकी नाँघती पहारन,

समारती न बारन बदन कुँमलानियां ।
कीबी अब क्यों कहैं गरीबी करैं भागीजांय,
बीबी बिन सूतन हैं नीबी बिन रानियां ॥
यहाँ वीररससे भयानकरस उत्पन्न हुआ है ।

पुनरपि–कवित्त ।

समर अमेठीके सरोप नसिंह,
सादतकी सेना समसेरनसों भानी है ।
भनत कवींद्रकाली हुलसी असीसनको,
ईशनको सीसकी जमात सरसानी है ॥
तहां एक योगिनी मसान खोपरीको लिये,
शोणित पियत ताकी उपमा बखानी है ।
प्याली लै चिनीको छको योबन तरंग मानो,
रंग हेत पीवत मँजीठ मुगलानी है ॥

यहां वीररससे वीभत्सरस उत्पन्न हुआ है । इसी-प्रकारसे चाहिये कि, जिसरसका चाहिये सो रसजनक वा जन्य होसकता है, तथापि इसके विषयमें साधारण नियम यह है कि, रौद्रसे करुण, विभत्ससे भयानक और शृंगारसे हास्यरस उत्पन्न होता है ।

२ अंगांगिभाव–जहां एकरसप्रधान और दूसरा उसका आश्रित रहता है वहां अंगांगिभाव माना जाता है ।

१ यहां रस शब्द स्थायीभावका बोधक है ।

इसके उदाहरण भी पिछली क्यारी में उल्लिखित होई चुके हैं। वेही यहांपर जानलिये जावें।

२ स्वतंत्रता—जहां एकहीपद्यमें अनेक रस स्वतंत्रता-पूर्वक पाये जाते हैं वहां स्वतंत्ररस संकर माना जाता है।

यथा—तु० कृ० रामायणे:—छन्द।

महि परत उठि भट लरत मरत न करत माया अतिघनी।
सुर डरत चौदह सहस निशिचर एक श्रीरघुकुलमनी।
सुर मुनि समय अवलोकि माया नाथ अतिकौतुक करे।
देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरे॥

यहां भयानक अद्भुत और वीररस स्वतंत्रतापूर्वक एक-ही पद्यमें आये हैं अतः यहां स्वतंत्रता रससंकर हुआ है।

अब आगे जिन चारप्रकारोंसे अर्थात् अभिमुख, विमुख, भावमुख और अलंकार मुख या परामुखसे इन रसोंकी प्रतीति है उनका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है।

१—विभाव, अनुभाव और संचारीभावद्वारा जो स्पष्टतया प्रधानतापूर्वक व्यक्त होता है उसे "अभिमुख" कहते हैं पाठक इसके उदाहरण द्वितीयक्यारीमें देखलेवें।

२—जिसमें विभाव, अनुभाव और संचारीभाव व्यक्त नहीं रहते अतः बडे कष्टसे रसबोध होता है उसे "विमुख" कहते हैं।

यथाः—चौपाई।

रामलखनसीताहनुमाना। सहितसुग्रीवहिं चढेविमाना॥
लंका छाँडि चले भगवाना। पहुँचे सागर तीर सुजाना॥

यहां राम लक्ष्मण सीता समस्त आपत्तिसे मुक्त हो पुनः एकत्रित हुए हैं अतः यहां अद्भुतरस है परंतु विभावादिकों के स्पष्ट न होनेके कारण उसकी प्रतीत बडे कष्टसे होती है।

३–जिसमें निर्वेदादि भाव प्रधान और रस गौण रहता है उसे "भावमुख" कहते हैं। तीसरीक्यारी के उदाहरणभावमुख रसकेही हैं।

४ जिसमें अलंकार प्रधान और रस गौण रहता है उसे "अलंकार-मुख" या "परामुख" कहते हैं।

यथाः—छन्दःप्रभाकर।

कीर्ति (वृक्ष.)

सखियों सुनिय सुखगाथा। ससि सोवहि आवन बाधा॥
ससि है सकलंक सरोरी। अकलंकित कीर्ति किशोरी॥

यहां दृष्टान्तोपमालंकार प्रधान और शृंगाररस गौण है इसलिये अलंकार मुखरस हुआ है।

सप्तमक्यारी ७.

गुण वृत्ति और रीति निरूपण।

यह बात पहिले निरूपित हो ही चुकी है कि, काव्यकी

त्मा रस है मनुष्यमें जैसे दक्षता, शूरता, उदारता तथा
ादि गुण रहते हैं वैसेही काव्यके भी माधुर्यादि गुण माने
ो हैं. ध्यान रहे कि, जैसे दक्षतादि गुण शरीरके नहीं किन्तु
त्माके हैं वैसेही माधुर्य्यादि गुण काव्यके नहीं किन्तु-
के हैं। यही कारण है कि, उनका भी इस रसप्रधान-
थमें थोडासा वर्णन किया जाता है। सामान्यतः गुणका
क्षण यह पाया जाता है।

"प्रधान रसका उत्कर्ष करनेवाले रसधर्म्मको गुण कहते
।" यह गुण तीन हैं अर्थात् माधुर्य्य ओज और प्रसाद।

गुण।

माधुर्य्य—जिस रचनाविशेषसे चित्तमें द्रवीभावमय आ-
दविशेष उत्पन्न होता है उसे माधुर्य्यगुण कहते हैं।

यह गुण संभोगश्रृंगार करुण विप्रलम्भश्रृंगार और शांत-
ोंको यथाक्रम अधिकाधिक परिपुष्ट करता है।

संयोगश्रृंगार यथाः—सवैया।

नके मुखपै जनु भानु उदै उनके मुखपै द्युति चंद्र विराजै॥
नके पट पीत लसै चपला उनके पट नील घटा घनगाजै॥
विराघव दोउ हँसैं बिहँसैं रस रंगभरे छबिसों छबि छाजैं॥
ित ऐसेही नेह सनेह सने सिय राम सदा हमरे हिय राजैं॥

विप्रलंभशृंगार ।

कवित्त—मंजुल मलिंद गुंजैं मंजरी न मंजु मंजु,
मुदित मुरैली अलबेली डोलैं पात पात ।
तैसेई समीर शुभ सोभै कवि द्विजदेव,
सरस असम शर बेधत वियोगी गात ॥
चाँथती चकोरनी चहूँघा चारु चांदनीन,
चान्यौ धांई चतुर चकोरते चहचहात ।
धीर ना धिरातचित्त चौगुनो पिरात आली,
कंतबिन हाय दिन ऐसेही सिरातजात ॥

शांतरस ।

दो०—कांता कंचन निंदरी, संतत संत प्रवीन ।
अंतअनंतानंद पद, होत चहँ जे लीन ॥

ओज—अंतःकरणको उद्दीपित करनेवाले गुणको ओज कहते हैं । यह गुण वीर, बीभत्स और रौद्ररसको अधिकाधिक परिपुष्ट करता है ।

वीररस अमृतध्वनि ।

धगिधगि डहभर विकट जहँ, लरत लच्छ पर लच्छ ।
भोभरनंभ नरेश मइँ, अच्छच्छदिपरलच्छ ॥
अच्छच्छविपर नच्चउच्चुटनि, विपच्छच्छय करि ।
रच्छउच्छिय अनि विसिन्धिर, सुभामिनिम्भय हरि ॥
डिड्डरडडारि समुङ्गिज्झड्डारि, दिग्गिज्जिज्झटपट ।
कुप्पन्दर कुप्पच्छटनि, विट्टपच्छनिभट ॥

बीभत्सरस।

कवित्त।

काली महाकालके समान है विशाल हेरि,
पकरि निशाचरन पट्ट पट्ट पटकत।
नैन विकराल लाल रसना दशन दोऊ,
भारि भारि खड्ग माँस गट्ट गट्ट गटकत॥
लोधनिपै लोथ रुंड मुंडते विहीनकेते,
उछारि उछारि भूमि चट्ट चट्ट चटकत।
योगिनी खवीसके हवीस खूब पूरे होत,
खप्परमें खूनभरि घट्ट घट्ट घटकत॥

प्रसाद।

शुष्ककाष्ठको जैसे अग्नि शीघ्रही व्याप्त करलेती है। वैसेही जिस रचनाके कर्णगत होतेही तत्काल अर्थबोध हो उसका जो गुण चित्तमें भिदजाता उसको प्रसाद कहते हैं। यह गुण सब रसोंमें एकसा पाया जाता है।

सवैया।

करिकैजु सिंगार अटापै चढी मन लालनको हियरा हलक्यो।
अँग अंग सुरंग सुगंध लगायकै बासचहूँदिशिको महक्यो॥
करतेइककंकण छूटिपर्यो सिढियन्नंफिन्यो बहक्यो बहक्यो।
कवि निद्धिभनै परशब्दभयो ठननं ठननं ठननं ठहक्यो॥

दोहा–लखि सुनि जाय न ज्वाब दे, सहे परे कन नीच ।
वास खलनके बीचको, बिना गुणेकी मीच ॥

पुनरपि–सवैया ।

केसोई क्योंन उदारमती नर हो गुण मौन कहैं सिगरे ।
हो न चहे जब पुण्य अधैमन पूरव मित्रनतें बिगरे ॥
आठहु जामजु आय बसे शठ कूर कुचालि निहीं डिगरे ।
चूल्हे परे चतुराइ सबै जब चोर चुगल्लके पाले परे ॥

यों तो और २ ग्रंथकारोंने १० गुण माने हैं पर साहित्य दर्पण तथा काव्यप्रकाश प्रभृति गण्य मान्यग्रंथप्रणेतृगणोंने वही छान बीनकर असद्भाव दोषके कारण उनमेंसे सात गुणों का परित्याग कर तीनही गुण माने हैं एतावता हमने भी उन्हीं तीन गुणोंका यहां पर वर्णन करना अवश्य समझा ।

वृत्ति ।

गुणव्यंजक रसानुकूल वर्णरचनाको वृत्ति कहते हैं। इसके भेद तीन हैं अर्थात् मधुरा, परुषा और प्रौढा यही तीनों यथा क्रम माधुर्य्य ओज और प्रसादगुणोंको व्यंजित करती हैं।

१ मधुरा ।

जिस रचनामें अनुस्वारोंकी प्रचुरता, ट ठ ड ढ को छोड़ क से म पर्य्यन्त सब वर्ण, ह्रस्व णकार, य र ल व और ह्रस्व रेफादि लिंगपरूपमे पाये जाते हैं उसको मधुरा या कोमलावृत्ति कहते हैं। यह माधुर्य्यगुणकी व्यंजक है।

२ परुषा ।

जिसरचनामें सविसर्गवर्ण अर्थात् चः, टः, पः, अ
और संयुक्ताक्षर परवर्ण अर्थात् संयोगीवर्णके कारण जि
पूर्ववर्गको छंदोनियमानुसार गुरुता प्राप्त होती है, जैसे
पुष्ट और तुष्टप्रभृति, वैसेही रेफ शीर्षकवर्ण जैसे र्ख,
वर्णके तृतीय और चतुर्थवर्णका संयोग जैसे द्ध ग्ध, जि
वर्णका उसीके साथ संयोग होता है जैसे क्क, च्च, ट्ट आ
और श, ष, ट, ठ, ड, ढ, प्रभृति वर्ण पाये जाते हैं, उ
परुषा वा आरभटीवृत्ति कहते हैं । यह ओज गुण
व्यंजितकरती है ।

३ प्रौढा ।

जिस रचनामें मधुरा और परुषावृत्ति का मिश्रण पाया
जाता है उसे प्रौढा वा सात्वतीवृत्ति कहते हैं । यह प्रसाद
गुणकी व्यंजक है ।

रीति ।

गुणव्यंजक रसानुमोदित पदरचनाको रीति कहते हैं ।
इसके भी तीन भेद हैं अर्थात् वैदर्भी, गौडी और पांचाली ।
यह भेद यथाक्रम माधुर्य्य ओज और प्रसादगुणकेव्यंजक हैं ।

१ वैदर्भी ।

जिस पदरचनामें समासयुक्त शब्द बहुतही कम पाये
जाते हैं उसे वैदर्भीरीति कहते हैं । यह माधुर्य्यगुणकी
व्यंजक है ।

२ गौडी।

जिस पदरचनामें चारपदकी अपेक्षा अधिक पदोंके समास पाये जाते हैं उसे गौडीरीति कहते हैं। यह ओजगुणकी व्यंजक है।

३ पांचाली।

जिस पदरचनामें चारपदोंसे न्यूनपदोंके समास पाये जाते हैं उसे पांचालीरीति कहते हैं। यह प्रसादगुणकी व्यंजक है।

साहित्यदर्पणकर्ता महापात्रजीने एक चौथी लाटीनामक रीति और लिखी है। उसका लक्षण आपने यों लिखा है। "जो रचना कुछ पांचाली और कुछ वैदर्भीके मेलसे बनती है, उसको 'लाटी' या 'लाटिका' कहते हैं"।

यद्यपि वृत्ति और रीति माधुर्यादि गुणोंकी व्यंजक होती हैं अतः रसानुकूलगुणके द्योतनार्थ उनका प्रयोग किया जाता है, तथापि प्रसंगादिभेदपर निम्नलिखित हेर फेर विचार करने योग्य हैं।

यद्यपि शृंगाररसकी पुष्टिके लिये माधुर्यगुणद्योतक रचना आवश्यक है, तथापि वक्ता क्रुद्ध या भीमकी नाईं धीरोद्धत या कोई निशाचर हो। तो उसके संवादमें ऐसे अवसर पर भी ओजगुणकी आवाज हो कोई अनुचित बात नहीं है।

वैसेही रौद्ररसके परिपोषार्थ दीर्घसमाससंघटित रचनाविशेषसे उत्पन्न होनेवाले ओजगुणकी आवश्यकता है, पर नाटकादि दृश्यकाव्योंमें दीर्घसमासयुक्त रचनाके अभिप्रायानुसा अभिनयकरना पात्रोंका कठिन बोध होगा, एतावता ऐ प्रसंगपर कोमल पदरचनाभी यदिकीजाय तो कोई दोष नह तात्पर्य्य है । पाठकोंको इसीप्रकारसे औरभी उचितानुचि तका विचार करलेना चाहिये ।

विद्याप्रिय पाठकोंको यह बात विशेषरूपसे ध्यानमें रखन चाहिये कि, जैसे अलंकारोंसे शरीर सुशोभित दीख पड़ता है पर वे न भी हों तो मनुष्यकी कुछ विशेष हानि नहीं होती। पर उदारता एवं शूरतादि आत्माके गुण यदि मनुष्यमें न हों तो उसकी योग्यता कम होजाती है । वैसेही काव्यभी यदि उपमा उत्प्रेक्षा तथा रूपकादि अलंकारोंसे अलंकृत हो तो औरभी चमत्कृतिजनक बोध होता है, पर साथ ही उनके अभावके कारण उसकी वैसी कुछ हानि भी नहीं होती।

परंतु माधुर्यादि गुणोंकी बात वैसी नहीं है। ये रसधर्म होनेके कारण काव्यके लिये परमावश्यक हैं।

इसकवित्तके आदिमें 'वीररस' शब्द स्वनामसे लाया-गया है, अतः दोष हुआ है । ऐसेही "बंकलगे कुछ बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी" इसचरणमें भी लज्जा-व्यभिचारीभावका स्वनामद्वारा उल्लेख दोष है । यही चरण यदि यों कहा जाता "बंकलगे कुचबीच नखक्षत देखि भई मुकुलाक्षित प्यारी" तो अक्षनिमीलनरूप अनुभावद्वारा लज्जाध्वनित हो उक्तदोष न होने पाता । पर ध्यान रहे कि, जहाँ विभाव वा अनुभावके योगसे तत्तद्भावकी स्पष्टतया प्रतीति न होसके वहाँ संचारीभाव यदि स्वनामसे निर्दिष्ट किया जाय तो दोष नहीं माना जाता ।

यथा—तु० कृ० रामायणे ।

दोहा—गुरुजन लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि ।
लागि विलोकन सखिन तन, रघुवीरहिं उर आनि ॥

यहां लज्जासंचारीभावका जो स्वनामद्वारा प्रयोग किया गया है, सो दूषित नहीं है । क्योंकि सकुचकर दूसरी ओर निहारना इस अनुभावका भीत्यादिमें होना भी संभव है ऐसी अवस्थामें सखियोंकी ओर देखने लगी. इस अनुभावद्वारा 'लज्जा' संचारी भावकाही निश्चयपूर्व्वक बोध न होसकता एतावता यहां लज्जा संचारीभावका जो स्वनामद्वारा उल्लेख किया है सो सदोष नहीं है । ऐसेही अन्यत्र भी जानिये ।

यह रस परस्परके विरोधी हैं, इनका एकत्रित वर्णन दूषित है ।

दोहा।

नख अघातते कुचनपर, बिंदु रुधिरके जोह ।
मानहु कुंकुमबिंदु अलि, सुवरण घटपर सोह ॥ १ ॥

यहां शृंगाररसका विरोधी बीभत्सरस वर्णित किया गया है । इसप्रकारसे पाठकगण अन्यरसोंके उदाहरणों को भी विचार लेवें ।

स्मरण रहे कि, यह विरोधी रस जहाँ देशभेद समयभेद रससंकर स्मृति साम्य और अंगांगिभावद्वारा वर्णित किये जाते हैं वहां वे दूषित नहीं माने जाते ।

यथा—देशभेद तु० कृ० रामायणे ।

छन्द—प्रभु कीन्ह धनुप टंकोर प्रथम कठोर घोर भयो महा।
भये बधिर व्याकुल यातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥

यहां वीर और भयानकरस यद्यपि परस्परके विरोधी हैं तथापि राममें वीर और राक्षसोंमें भयानक होनेके कारण अर्थात् वे भिन्नदेशमें वर्णित होनेके कारण दूषित नहीं हैं ।

अब नीचे विरोधीरसके विभावका एक उदाहरण दिया जाता है।

यथा—सवैया ।

ऐहे न फेरि गई जो निसा तन जोवन है घनकी परछाहीं ।
त्यों पदमाकर क्यों न मिले उठि यों निबहेगो न नेह सदाहीं ॥

कौन सयानि जो कान्ह सुजानसों ठानि गुमान रही मनमाहीं ।
एक जो कंजकली न खिली तौकहों कहूँ भौंरको दौरहै नाहीं॥

यहा जो योवनकी चंचकता मेघकी परछाहींवत् वर्णित कीगयी है सो शृंगाररसके विरोधी शांत रसका उद्दीपनविभाव है । ऐसेही अन्यत्र भी जानो ।

रसाविर्भावके प्रधान कारण विभाव और अनुभावही हैं एतावता उनका वर्णन जितना स्पष्ट होसके उतनाही उत्तम है. विभाव और अनुभावकी प्रातिका कष्टसे बोध होना और उसके कारण रस विशेषकी प्रतीतिमें विलंब होना दोष है ।

निरखि जात मग सुंदरिहीं, ढांपि लियो निजगात ।

इस अर्द्धालीका यह अभिप्राय है कि किसी कामीपुरुषने मार्गमें एकस्त्रीको देखा उसपर उसका मन आसक्त होनेके कारण उसे रोमांच हुआ पर रोमांचको यदि कोई देखलेगा तो परिहास करेगा एतावता उसे छिपानेके लिये उसने ऊपरसे दुपट्टा ओढ़लिया । यहां स्त्रीको देखना और अंगको ढांपना इन विभावानुभावोंद्वारा उसे रतिही उत्पन्न हुई और उसे रोमांच हुआ इत्यादिसे शृंगाररसकी प्रतीति बडे कष्टसे होती है ।

अब नीचे ग्रंथप्रबंध विषयक कतिपय दोषोंका निरूपण कर यह क्यारी पूर्ण की जाती है ।

काव्यमें अप्रधान घटनाओंका विस्तृत वर्णन करना दोष है । काव्यमें बहुधा कुछ घटनाएँ प्रधान रहती हैं

और कुछ तदाश्रित गौण रहती हैं. ऐसी अवस्थामें कविको उचित है कि, वह गौण घटनाओंका उतनाही वर्णन करे कि जितनेसे प्रधानघटनाका संबंध हो, वा उसके जितने वर्णनसे प्रधानघटना परिपुष्ट होती हो। क्योंकि गौणघटनाके सविस्तर वर्णनद्वारा प्रधानविषयकी उपेक्षा हो रसविच्छेद हो जाता है। यह न तो एक दो पद्योंद्वाराही उदाहृत होसकताहै और न हम यहांपर विस्तारभयसे किसी पूरे प्रबंधकोही उद्धृत करसकते हैं। एतावता दिग्दर्शनार्थ नीचे कतिपयस्थानोंको नामोल्लेख करदेते हैं।

प्रथमतः हम उन प्रचंड पंडितप्रवरोंका नामोल्लेख करते हैं कि, जिनलोगोंने हमारे महाकाव्य लक्षणोपेतकाव्यसे कहीं बढे हुए भाषाके अद्वितीय काव्यरत्न श्रीमद्गोस्वामीबाबा तुलसीदासजीकृत चौपाई रामायणको क्षेपकोंद्वारा दूषित करनेमेंही अपने समस्त पांडित्यको शेष किया है।

न जाने इन क्षेपक लेखक काव्यविशारदोंने इसबातको क्यों नहीं विचारा कि, आजदिन हम जिन कथाओंको विस्तृत करते हैं उन्हें उसे स्वयं गोसाँईजीने विस्तृत क्यों नहीं किया ? क्या वे उन्हें विस्तृत नहीं करसकते थे ? गोसाँई जीने उन्हें विस्तृत नहीं किया है तो इसका कोई गुरुतर कारण अवश्य होगा। हमें भरोसा है कि, हमारे क्षेपक विचक्षणलोग यदि इसबातको अपने विचारक्षेत्रमें स्थानप्रदान करते तो वे के-

वल अबोधलोगोंकी थोथीप्रशंसा[1] के मोहमें फँसकर उक्त-काव्यमें क्षेपक प्रविष्टकर उसे रसविच्छेद दोषसे दूषित न करते। सारांश इस प्रचंड हानिका कारण उनलोगोंकी विचार शिथिलताही कही जासकती है। परंतु संतोषका विषय है कि, मैनपुरनिवासी श्रीयुत लाला मुन्शी सुखदेवलालजीने अपने प्रचंड उद्योगकांडद्वारा प्रमाणसिद्ध युक्तिपूर्वक अखिलक्षेपकोंको बहिष्कृतकर श्रीमद्गोस्वामीजी लिखित प्रबंधको सटीक लिख भावी काव्यमर्मज्ञ लोगोंकी एक गंभीर चिंता को दूर करदिया है। एतदर्थ उक्त मुन्शीजीको जितने साधुवाद दिये जाँय उतने थोडेही हैं। उक्त मुन्शीजीके साथही साथ हम मुन्शी नवलकिशोर साहिब सी. आई. ई. को भी अनेकानेक धन्यवाद देते हैं कि, जिन्होंने उक्त रामायणको निजव्ययसे प्रकाशित कर एक अनूठे ग्रंथकी रक्षा की है।

---

१ अबोधलोग प्रायः कहा करते हैं कि, अमुक पंडित जीकी रामायणमें बहुत थोडी कथा है पर अमुक पंडितजीकी पोथी बहुतही अच्छी है उसमें रावणके श्वेतद्वीपमें मान मर्दनकी कथा, गंगोत्पत्तिकी कथा, ताट पुत्रोत्पत्तिकी कथा, सुलोचनाकी कथा, नरांतक और दधिबल की कथादि बहुत अच्छी२ कथा हैं। मानोकि अबोध एवं केवल कथानिबद्धलोग इतनातक नहीं जान सकते कि, गोस्वामीजीका प्रधान अभिप्राय श्रीरामचंद्रजीका चरित्रलिखनेका था सो अपने अभिप्रायकी पुष्टिके हेतु जितनी गौणकथा अभीष्टथी उतनीही गोसांईजीने लिखी है, गौणकथाके विस्तारद्वारा पाठकोंको प्रधानविषयकी विस्मृति नहीं होने दी है। पर इतना भी विचार इन्हें क्षेपक लिखनेवाले पंडितों को कर्तव्य था।

ऐसेही वर्णनीय विषयके रसोत्कर्षको छोड़ बीचहीमें उसका उच्छेद करदेना, तदनुपयोगी घटनाओंका वर्णन करना; नायक नायिका तथा अपरपात्रोंके स्वभावके विपरीत उनका संवाद वर्णित करना देश कालका विपर्यय करना आदि भी दोषस्वरूप हो रसके विघातक होते हैं अतः कवि को इन सब बातोंका पूर्णरूपसे विचार करना उचित है ।

नवमक्यारी ९.

ध्वनिनिरूपण ।

काव्यके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ऐसे तीन भेद हैं। इनमेंसे प्रथमभेद उत्तमसंज्ञक काव्यकोही ध्वनि कहते हैं ।

रसका अंतर्भावभी इसीमें किया जाता है एतावता यहां ध्वनिका संक्षिप्त वर्णन अनुचित न होगा । काव्यके उत्तमादि भेद प्रायः अर्थपर निर्भर रहते हैं अतः प्रथम अर्थका ही विवेचन अभीष्ट जान पडता है ।

अर्थविवेचन ।

शास्त्रकर्ताओंने अर्थको तीनभेदोंमें विभक्त किया है अर्थात् वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ ।

१ शब्दके संकेतित अर्थको वाच्यार्थ और उस शब्दको उसका वाचक कहते हैं । वाच्यार्थ कोही शक्यार्थ, मुख्यार्थ और स्वार्थ भी कहते हैं । (और इस व्यापारको शक्ति वा अभिधावृत्ति कहते हैं) जैसे 'घट' शब्दसे जो संकेतित

कहे "यह मुझे आजही ज्ञात हुआ कि, मेरामुख दर्पण है"। इस उत्तरका यही अर्थ हुआ कि,"तूही शठ" है। यह अर्थ न वाच्यार्थही है और न लक्ष्यार्थही है किंतु एक तीसराही प्रतीयमान अर्थ है। इसे ध्वन्यर्थ भी कहते हैं। और भीः—

काव्यभेद।

काव्यके तीन भेद हैं अर्थात् उत्तम मध्यम और कनिष्ठ. जिसकाव्यमें व्यंग्यार्थही मुख्य अर्थात् विशेष चमत्कृति-जनक रहता है उसे उत्तम काव्य वा ध्वनि कहते हैं।

२—जिसकाव्यमें व्यंग्यार्थ गौण रहता है उसे मध्यम काव्य कहते हैं। गुणीभूत व्यंग्य भी इसेही कहते हैं।

३—जिसकाव्यमें व्यंग्य स्पष्ट नहीं रहता किंतु शब्द और अर्थकीही विचित्रता पायी जाती है उसे कनिष्ट वा अ-व्यंग्य काव्य कहते हैं चित्रकाव्य भी इसीको कहते हैं।

इस रसप्रधानग्रंथमें उक्त काव्यभेदके उदाहरण देना अनुचित विस्तार करना बोध होता है अतः वे यहांपर उदा-हृत नहीं किये जाते।

ध्वनिमीमांसा।

ध्वनिके प्रधानभेद दो हैं अर्थात् अविवक्षितवाच्य और विवक्षितवाच्य इनमेंसे प्रथम लक्ष्यार्थमूलक और द्वितीय [illegible] :मूलक हैं।

अविवक्षितवाच्य।

[illegible] वाच्यार्थ बिलकुल छूटजाता है वा अर्थान्तर

द्वारा भासित होता है उसे अविवक्षितवाच्य कहते हैं यह लक्ष्यार्थमूलक होता है ।

यथाः—तु०कृ०रामायणेः—चौपाई ।

धाउ कृपा मुरति अनुकूला । बोलत वचन झरत जनु फूला ॥

यह लक्ष्मणजीका वचन परशुरामजीके विषयमें है । यहां कृपा, अनुकूलमूर्ति और फूल अपने २ वाच्यार्थको छोड़ तद्विपरीतअर्थका बोध कराते हैं अर्थात् लक्ष्मणजीके कोपको व्यंजित कराते हैं ।

विवक्षितवाच्य ।

जिसध्वनिमें वाच्यार्थका परित्याग वा रूपांतर नहीं होता उसे विवक्षितवाच्य कहते हैं । यह अभिधामूलक होता है । इसके तीन भेद हैं अर्थात् वस्तुध्वनि अलंकारध्वनि और रसध्वनि ।

१ वस्तुध्वनि—जिसध्वनिमें व्यंग्यार्थद्वारा किसी घटना (वस्तु) वा पदार्थका बोध होता है उसे वस्तुध्वनि कहते हैं ।

यथाः—कवित्त ।

घटा घहरात तामैं बीजुरी न ठहरात,
शीतल समीर त्योंहीं लाग्यो मेह झर है ।
पौरिय रतौंधी आवै सखी मैं सोय रहीं,
जानत न कोऊ परदेस मेरो वर है ॥
ननंद निपानी सासमायके सिधारी देखि,
भारी अँधियारी तामैं सूझत न कर है ।
भादनकी सूनी अधरात निशि जागि जागि,
आँगन पछोरी हरी चोरनको डर है ॥

यहां वचनविदग्धा नायिकाने पावससमय पतिकी परदेश यात्रा कथनद्वारा किसी पथिकको अपनी उत्कंठा और द्वारपालको रतौंधी आती है अपर सखी सो गई हैं ननँद अलग रहती है सासु निजमायकेको गयी है आदि कथनद्वारा यहां किसीका भय नहीं है ऐसा व्यंग्यार्थ सूचित किया है कि, जिससे पथिक आजरातको यहाँही रहै ऐसी वस्तु सूचित होती है। अतः यहां वस्तुध्वनिनामकविवक्षित वाच्य हुआहै।

२ अलंकारध्वनि—जिस ध्वनिद्वारा किसी अलंकार विशेषका बोध होताहै उसे अलंकारध्वनि कहते है।

यथाः—चौपाई।

गिरामुखरतनअर्द्धभवानी। रतिअतिदुखितअतनपतिजानी॥
विषयवारुणी बंधुप्रिय जेहीं। कहिय रमासम किमि वैदेही॥
जो छबि सुधापयोनिधि होई। परमरूप मय कच्छप सोई॥
शोभारज्जु मंदर श्रृंगारू। मथै पाणि पंकज निजमारू॥

दो०—यहि विधि उपजै लक्षि जब, सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीयसमतूल॥

"सरस्वतीजी, पार्वतीजीकी अपेक्षा सीताजीका सौंदर्य अधिकतर कहागया है। यहां व्यतिरेकालंकार व्यंग्यार्थद्वारा प्रतीत होता है। अतः यहां अलंकार ध्वनिनामक विविक्षित वाच्य हुआ है।

३ रसध्वनि—जिसध्वनिमें रस, भाव, रसाभास और भावाभास व्यंग्यार्थद्वारा बोध होते हैं उसे रसध्वनि

कहते हैं । इनके उदाहरण पीछे उल्लिखित होहीचुके हैं । अतः पुनः उनके यहां उल्लिखित करनेकी कोई आवश्यकता बोध नहीं होती । यहांपर केवल इतना ही लिख देना अलम् होगा कि, पीछे 'रस' की व्याख्यामें जो परिपुष्ट शब्द व्यवहृत किया गया है उसे व्यंग्यार्थका बोधक मानना चाहिये, क्योंकि अलंकारिकोंका सिद्धांत है कि, रस तथा रसाभासादि व्यंग्य है और उनके विभावादि व्यंजक हैं ।

पाठकोंको यह बात विशेषरूपसे स्मरण रखना चाहिये कि 'रस' वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थद्वारा प्रतीत नहीं होता क्योंकि वाच्यार्थ केवल संकेतित अर्थकोही बोधित करता है उससे अधिक अर्थ ज्ञातकरनेकी उसमें शक्ति नहीं रहती और रस यदि वाच्यार्थगम्य होता तो रस, करुण, वीर, शृंगार इत्यादि शब्दोंके कर्णगत होतेही तत्तत् रस प्रतीयमान होने चाहिये था पर वैसा नहीं होता । किंतु विभावादिकोंका वर्णन पढ़ उसकी प्रतीति होती है इससे यही प्रतिपादित हुआ कि, रस वाच्यार्थगम्य नहीं है । वैसेही रसका लक्ष्यार्थद्वाराभी बोध नहीं होसकता । क्योंकि, रसानुभावमें स्वार्थका विरोध कहीं नहीं पाया जाता।

इस छोटेसे ग्रंथमें इस गंभीरविषयका पूर्णतया वर्णन करना असंभव है । इसीलिये यहांपर संक्षिप्त वर्णन किया गया है । हमें भरोसा है कि, इस छोटेसे दिग्दर्शनस्वरूप परिचयद्वारा हमारे पाठकोंकी जिज्ञासा जागृत होगी और उन्हें इस विषयके बड़े २ ग्रंथ पढनेका उत्साह होगा।

दशमक्यारी १०.

रसास्वादादिनिरूपण।

रसास्वादके विषयमें बहुत भिन्नता पायी जाती है। इस मतभिन्नताका कारण हमारे रसशास्त्रके आद्याचार्य्य भरतमुनिके नाट्यशास्त्रका "विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" यह सूत्र कहा जाता है इससूत्रका यह अभिप्राय है कि, 'विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावके संयोगसे रसकी निष्पत्ति होतीहै' इस सूत्रका अर्थ करनेमें 'संयोगात्' पदका अर्थ भिन्न २ ग्रंथ कर्त्ताओंने भिन्न २ प्रकारका माना है। क्यों कि 'संयोगात्' पंचमी कारकहै और पंचमी कारक हेत्वर्थी होता है कि जिसमें जनकता और ज्ञापकता दोनों पायी जासकती हैं। जैसे सुवर्णसे कंकण बनाया जाता है। इसमें सुवर्ण कंकणका जनक कारण है। और अंधेरेमें दीपकसे पदार्थ दीख पड़ते हैं। यहां दीपक पदार्थ दर्शनका ज्ञापक कारण है। ऐसी अवस्थामें यह शंका स्वभावतः उत्पन्न होती है कि, विभावादिकोंका संयोग रसका जनक कारण है वा ज्ञापक कारण है। ऐसीही संदिग्धता 'निष्पत्ति शब्द' के अर्थमें भी पायी जाती है। विभावादि यदि रसके जनक कारण माने जाँय तो निष्पत्तिका अर्थ उत्पत्ति ग्रहण करना चाहिये और यदि ज्ञापक कारण माने जावें तो 'निष्पत्ति' का अर्थ [illegible] करना चाहिये। सारांश यह संदिग्धताही रसा-

स्वादके मतभेदकी भित्तिका है। यह मतभेद बहुत हैं। नीचे इनमेंसे कतिपय मतभेदका संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है।

१ किसी किसीकी सम्मति है कि, चमत्कारोत्पादक विभावही रस है।

२ किसी किसीकी सम्मति है कि, विशेषचमत्कारजनक अनुभावही रस है।

३ किसी किसीकी सम्मति है कि, विशेष चमत्कृतिजनक संचारीभावही रस है।

यह तीनों मत सूत्रके विरोधी पाये जाते हैं। क्योंकि सूत्रमें विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावोंके संयोगसे रस निष्पत्ति वर्णित है। और इन मतोंमें एकहीको प्रधानता प्रदान कीगयी है। इसके सिवाय इन तीनोंमेंसे अकेलेमें रसोत्पत्ति करनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि सिंहादि घातुक पशु जैसे भयानकरसके विभाव है, वैसेही वे वीर रौद्र और अद्भुत रसके भी होसकते हैं। उसीप्रकारसे अश्रुपतनादि जैसे विप्रयोग शृंगारके अनुभाव हैं। वैसेही वे करुण और भयानकरसके भी होसकते हैं। चिंतादि व्यभिचारीभाव जैसे शृंगाररसमें पाये जाते है। वैसेही वे करुण, वीर और भयानकरसमें भी पाये जाते हैं। इससनिरादनेंसे पाठक जानलेंगे कि, केवल विभाव, अनुभाव, वा व्यभिचारीभावद्वारा रसकी प्रतीति होना असंभव है। अतः यह तीनों मत दूषित हैं।

किसी किसीकी सम्मति है कि, " विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावमेंसे जिसके द्वारा चमत्कृति उत्पन्न हो उसेही रस कहते हैं । इस मतमें भी उक्त दोष पाये जाते हैं।

किसी किसीकी संमति है कि, विभाव, अनुभाव और संचारीभावके संमेलकोही रस कहते हैं । इसलक्षणमें रसास्वाद क्योंकर और कैसा होता है आदिके विषयमें कुछ नहीं लिखा गया है अतः यह लक्षण भी निरर्थक है ।

श्रीशंकुककी सम्मति है कि, नाटकमें नट जब रामादिका वेष धारणकर रंगभूमिपर आता है तब उसे देख दर्शकोंको और काव्यपठनद्वारा पाठकोंको उस व्यक्तिविशेषकी जो प्रतीति होती है सो सम्यक्[1], मिथ्या, संशय और सदृशतादिसे भिन्न चित्रतुरगन्यायद्वारा[2] होती है और उस समय नट जो स्वांगानुसार चेष्टा प्रदर्शित करता है, वा कवि काव्यमें उन्हें यथावत् वर्णित करता है उनके योगसे उत्पन्न होनेवाले रत्यादिके विभाव अनुभाव और संचारीभावोंकी यथार्थ स्थिति नटमें वा काव्यमें न होनेपरभी वस्तुसौंदर्यकी

१ यही राम हैं ऐसे निश्चयात्मक ज्ञानको सम्यक् प्रतीति कहते हैं, रामके होते यह राम नहीं है ऐसेही निश्चयपूर्वक ज्ञानको मिथ्या प्रतीति कहते हैं, यह राम हैं वा कोई और है, ऐसे संशय प्रयुक्त ज्ञानको संशय प्रतीति कहते हैं और यह राम कैसा है ऐसे ज्ञानको सदृशताप्रतीति कहते हैं ।

२ मृत्तिकानिर्मित घोडेके उत्कृष्ट चित्रको देख दर्शकको आपाततः उक्त चारों प्रकारोंसे भिन्न जो घोडेकी प्रतीति होती है उसको चित्र तुरगन्याय कहते हैं ।

प्रबलता तथा पूर्वसिद्ध वासनाके कारण वे दर्शक वा पाठकोंको यथार्थही जान पडते हैं और उनसे वह नट वा काव्यमें रत्यादिकोंको अनुमित करते हैं उससे उन्हें जो चमत्कारानुभव होता है उसीको रस कहते हैं"। इस मतमें यह प्रतिपादन किया है कि, वासनारसास्वादनका प्रत्यक्ष कारण नहींहै किंतु वासनाद्वारा होनेवाला अनुमान रसास्वादनका कारण है, इस प्रतिपादनद्वारा गुरुता अवश्य प्राप्त होती है। और साथही यह भी ज्ञात होता है कि, रत्यादिका संबंधदर्शक वा पाठकोंसे अणुमात्रभी नहीं रहता किंतु जो संबंध रहता है सो सब नट वा काव्यसेही रहता है। यहां यह प्रश्न महसा उपस्थित होसकता है कि, प्रत्यक्ष संबंधविना रसास्वाद कैसे प्राप्त होसकता है ? हां यह अवश्य कहा है कि, वस्तुसौंदर्य्यकी प्रबलताके योगसे वह प्राप्त होसकता है परंतु यह बात जनानुभवके विपरीत बोध होती है। और यह भी कहा है कि, रसोंके विभावादि कारण असत्य होनेपर भी रसिकोंको उनका अनुभव होता है। यहां पुनः यह प्रश्न उपस्थित होताहै कि, असत्यकारणसे सत्यकार्य्यकी उत्पत्ति क्योंकर होसकती है। यह प्रतिपादन यदि सत्य मान लिया जाय तो छः महीनेके बालकको भी रसप्रतीति होनी चाहिये पर वह होती नहीं, एतावता इस मतमें भी दोष पाया जाता है।

काव्यप्रकाशमें भट्ट लोलट्ट प्रभृतिकी संम्मति यह पायी जाती है कि,नायिका और उपवनादि आलंबन तथा उद्दीपनादि कारणोंके योगसे रत्यादि स्थायीभाव प्रथम उत्पन्न होतेहैं।

अंगविक्षेपादि काय्यों द्वारा दृग्गोचर होते हैं । और निर्वेदादि संचारीद्वारा अभिवृद्ध होते हैं । इसप्रकारसे परिपुष्ट हुआ रस यथार्थतया तो दुष्यंतशकुंतलादि नायक नायिकामेंही पायाजाता है । पर वही उनके रूप धारण करनेवाले नटोंमें भी प्रतीत होनेके कारण उनसे अभिनय दर्शकोंको भी जो एकप्रकारका चमत्कार बोध होता है उसीको रस कहते हैं । इस मतमें प्रत्यक्ष संबंध दुष्यंतशकुंतलादिकोंमेंही माना जानेके कारण प्रेक्षकोंको रसप्रतीतिका होना संभव नहीं बोध होता । अतः यह मतभी सदोष है ।

भट्टनायककी सम्मतिका यह आशय है कि, काव्य और नाटकके नायकादिसे पाठक वा दर्शकका अणुमात्र भी संबंध न मानकर तटस्थताद्वारा यदि रस प्रतीति मान ली-जाय तो उसे रसका आस्वाद प्राप्त न होसकेगा । अतः यदि अभेदरूप संबंध मानलिया जाय तो यही नायकनायिकारूप होजानेके कारण विभाव नहीं पाये जाते । और विभावोंके सिवाय निराधार रसकी प्रतीति हो नहीं सकती, इससे यही निर्द्धारित हुआ कि, तटस्थता वा आत्मगतत्त्वद्वारा रसका आस्वाद प्राप्त नहीं होसकता । इसीप्रकारसे यह भी नहीं कहसकते कि, रस नया उत्पन्न होता है वा व्यंजित होता है ।

इसीलिये काव्य और नाटकके रसास्वादके लिये अ-भिधा, भावना और भोग ऐसे तीन अंश अर्थात् व्यापार .ने चाहिये । अभिधा व्यापारद्वारा पदार्थका ज्ञान होता

है । भावनाव्यापारद्वारा उस पदार्थसे पाठक वा दर्शकका साधारणीकरण होता है । अर्थात् नायकादिकोंमें दुष्यंत शकुंतलादि संबंधविशेषका प्रतिबंध हो सामान्य कांतादिविषयक ज्ञान रहजाता है । भोगसंज्ञक व्यापारद्वारा पाठक वा प्रेक्षकमें सत्त्वगुणका आविर्भाव हो वासनाके योगसे पूर्वसिद्ध तथा भावनाके योगसे प्रकाशित हुए रत्यादि स्थायी नाका आत्मचैतन्यसे तदाकार वृत्तिरूप जो साक्षात्कार होता है । अर्थात् आनंदोपभोगका लाभ होता है । उसीको रस कहते हैं । इस मतमें भावना विशेषस्वीकृत कीजानेके कारण किंचित् गुरुता अधिक प्राप्त होजाती है ।

रसगंगाधरमें नवीनोंके मतसे एक यह मत पाया जाता है कि, काव्यमें कवि तथा नाटकमें नटके विभावादि प्रकाशित करनेपर पाठक या प्रेक्षकोंको प्रथमतः व्यंजनाशक्तिद्वारा शकुंतलाके विषयमें दुष्यंतको रति (प्रेम) उत्पन्न हुई है ऐसी सामान्यप्रतीति होती है। अनंतर जैसे अज्ञानावस्थामें सीपमें रजतका भाम होता है वैसे केवल सहृदयमें उत्पन्न भावनाके योगसे शकुंतलाविषयक दुष्यंतकी रतिका अभेदरूपसे जो अनिर्वचनीयभास होता है उसीको रस कहते हैं । यह पूर्वोल्लिखित भावनारूप दोषका कार्य है ।

अभिनवगुप्ताचार्य और मम्मटकी सम्मति यह है कि, काव्य तथा नाटकके विभावादिकोंको देखकर सहृदयके मनमें स्वभावतः ही कई मनोविकार अनुभवद्वारा आविर्भूत होते हैं । अनंतर वही विभावादिक भावकत्वात्मक एक

व्यापारविशेषके योगसे दुष्यंत शकुंतलादि विषयक संबं
विशेषसे भिन्न किसी कामिनीपर कोई कामी आसक्त हुअ
है ऐसी सामान्यतः प्रतीति होती है और पश्चात् पूर्वसि
रत्यादि मनोविकार सहृदयके चित्तमें व्यंग्यार्थसे अभिव्यक
होते हैं और चर्वणरूपसे उसे उनका आस्वाद मिलता है
अर्थात् उनसे उसे जो चमत्कार जान पडता है और जो
ब्रह्मानंद तुल्य आनंद होता है उसीको रस कहते हैं इसको
कार्य्य नहीं कहसकते, क्योंकि उसके विभावादिकारणोंका
नाश हो जानेके अनंतर भी वह दीर्घकालतक रहसकताहै
उसीप्रकारसे ज्ञाप्य भी नहीं कहसकते। क्योंकि जो पदार्थ
पूर्व्वसिद्ध रहताहै उसीका ज्ञान होसकता है। रस पूर्व सिद्ध
न होने तथा कारक और ज्ञापकसे भिन्न होनेके कारणही
अलौकिक वा लोकोत्तर माना गया है। यहां पर यह शंका
अवश्य उत्पन्न होसकतीहै कि, ऐसा कोई पदार्थही नहीं है कि
जो कारक वा ज्ञापक न हो ऐसी अवस्थामें रस ही वैसा कैसे
माना जासकेगा? इस शंकाका समाधान इसप्रकारसे होसकताहै
कि, इस बातको उसकी अलौकिकताही सिद्ध करती है।
अतः वह दूषण नहीं है किंतु भूषणही है। अब यह बात
सच है कि, चर्वणातिरिक्त उसकी निष्पत्ति नहीं होसकती
...तावता चर्वणा रसनिष्पत्तिका कारण है और रसचर्वणाका
...र्य है। और यह माननेमें भी कोई हानी नहींहै कि, लोको
...तरकी सहायतासे वह स्वसंवेद्य होनेके कारण ज्ञेयभी है।
यहांलों संक्षिप्तरीतिसे रसास्वादनके विषयमें विवेचना कीगयी।

अब आगे रसकाव्यकी आत्मा है इस विषयकी आलोचना की जाती है। रसास्वादकी नाईं इस विषयमें भी मतभिन्नता पायी जाती है। नीचे कतिपय मतोंका संक्षेपसे उल्लेख किया जाता है। ध्वनिकारने काव्यको पुरुष मानकर उसके अंगोंकी इस प्रकार योजना की है कि, शब्द और अर्थ काव्यका शरीर माधुर्य्यादि गुण शौर्य्यादि गुणोंकी नाईं उसके गुण कर्णकटुतादि कानिपनके समान उसके दोष रीति हस्तपादादिके सदृश उसके अवयव उपमादि वस्त्र एवं भूषणकी नाईं उसके अलंकार और रस उसकी आत्मा (जीव) है। यह व्यवस्था गंभीर विचारकी है। जब कि, काव्यका वर्णनीय विषय रसही है तब रसको उसकी आत्मा मानना उचितही है। तथापि अपर ग्रंथकारोंकी सम्मति भी हम अपने प्रगल्भबुद्धिके पाठकोंके विचारार्थ नीचे प्रकाशित करदेते हैं।

किसी किसी ग्रंथकारने रीति ही को काव्यकी आत्मा माना है। रीति एक प्रकारकी अक्षररचनाको कहते हैं। रीति ही यदि काव्यकी आत्मा मान लीजाय तो अर्थचमत्कृतिजनक काव्यप्रणेता कालिदास भवभूति प्रभृति महाकवियोंकी अपेक्षा यमक जोड़नेवाले कविकी योग्यता कहीं बढजायगी तात्पर्य्य रीतिको काव्यकी आत्मा मानना अनुचित बोध होता है।

---

१ शब्द औ अर्थ शरीर गुनो रस आदिकों काव्यको भाव बखानो॥ सूरता आदिसो है गुण औ पुनि अंधता आदिहों दोष बिमानो ॥ अंगनके बांउ ढंग विलासो पादिन होनसो रीतिहि मानो। कंकन कुंडल आदि सों आदि अलंकृति यो उर अंतर आनो॥ साहित्यरत्नाकर-काव्यनिरूपण।

ध्वन्यालोकसंज्ञक ग्रंथमें लिखा है कि, ध्वनिही काव्यकी आत्मा है। यदि ध्वनि काव्यकी आत्मा मान लीजाय तो प्रहेलिकादि चित्रकाव्यकी भी उत्तम काव्यमें गणना करनी पडेगी। पर चित्रकाव्यको सहृदयलोग अधमकाव्य मानते हैं। अतः इस लक्षणमें अव्याप्तिदोष प्राप्त होता है।

इसी प्रकारसे सभाप्रकाश साहित्यपरिचय काव्यप्रकाश रसरहस्य आदि ग्रंथोंमें एतद्विषयक मतभिन्नता पायी जातीहै इन सबको सावधानीपूर्वक विचारनेसे संप्रति यही बातसिद्ध होती है कि साहित्यदर्पणके मतानुसार रसही काव्यकीआत्मा है।

उक्त प्रतिपादन द्वाराहमारे कुशाग्रबुद्धि पाठकोंको यह बात लक्षित होही चुकी होगी कि, काव्यका प्रधानफल मनोरंजकता है। और यह काव्यके जिस अंगसे प्रतिपादित होसकता है, वही अंग उसका सर्वस्व हो सकता है। उक्त मत वैचित्र्याको देख यह भी अनुमित होसकता है कि, जिस समय लक्षण ग्रंथकारोंने लोगोंकी जैसी अभिरुचि देखी वैसेही लक्षणग्रंथ प्रणीत किये। संप्रति जिन लोगोंने अंगरेजी कविताका भलीभाँति आस्वाद लिया है उनके मुँहसे यही बात निकलती है कि जिसकाव्यमें प्रकृति देविकी सुंदरता और वस्तुस्वभावका उत्कृष्ट वर्णन पाया जाता है वही काव्य परमोत्तम है। आश्चर्य्य नहीं कि, कुछ कालके अनंतरस्वभावोक्ति अलंकारही काव्यकी आत्मा मानी जाने लगे। तात्पर्य्य उत्तमता रसिकजनोंकी अभिरुचिपर निर्भर है।

इति रसवाटिका समाप्ता।